मैं
बनूँगा
गुलमोहर
सुशोभित सक्तावत

मैं बनूँगा गुलमोहर

(सुशोभित सक्तावत की प्रेम कविताएँ और गद्यगीत)

सुशोभित सक्तावत

लोकोदय प्रकाशन

लखनऊ

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक की अनुमति के बिना इस पुस्तक या इसके किसी भी अंश का पुनर्प्रकाशन या अन्य किसी भी माध्यम से उपयोग प्रतिबंधित है।

ISBN : 978-93-87149-73-1

कॉपीराइट © सुशोभित सक्तावत
प्रथम संस्करण: दिसम्बर 2018
आवरण : सुशोभित

लोकोदय प्रकाशन प्रा. लि.
65/44, शंकर पुरी, छितवापुर रोड, लखनऊ- 226001
दूरभाष : 9076633657
ई-मेल: lokodayprakashan@gmail.com

अनुक्रम

और मैंने भी तो
प्रेम पत्र
रंगरसिया
मैं बनूँगा गुलमोहर
चाहना का गीत
तुम्हारी प्रतीक्षा के समुद्र तट पर
नौका को नदी में उतारो तो
मुझे तुम्हारी नींद से बहोत रश्क है
अपनी नदी से कहो बदले करवट
तुम तो शहद का छत्ता हो
तुम मुझे मेरा नाम लेकर पुकारो
प्यार में दुबलाई लड़की
प्रणय पुरुष का एकालाप है!
स्वांग है उसका धनुष!
चेष्टा के चंद्रमा से निस्तेज
बारिश का लिहाफ़ भी नाकाफ़ी था
तुम्हारी मुस्कराहट एक खिड़की थी
वह दीप्ती है
मछलियों की गंध से भरे उस जज़ीरे पर
जनवरी के दूसरे छोर पर
जहाँ रहती थीं तुम
मत्स्यगंधा
कैसे हो पागल जैसा ये बादल
लड़की लड़के को 'कोलंबस' कहती थी
अच्छा सुनो दीप्ति

फ़ारूख़ शेख़ जैसा लड़का हो, दीप्ति नवल-सी लड़की
दुनिया तुम्हारी अनुपस्थितियों से भरी हुई है
दिल्ली मेट्रो वाली लड़की
चिड़ियों के लिए पानी
लालबत्ती से एक 'ब्लश वाली स्माइल'
एकबारगी तो भूल ही गया तुम्हारी आँखों का रंग क्या है
स्माइलीज़ से मिलता-जुलता है तुम्हारा चेहरा!
'एग्नेस' : तीन स्केच
मैंने उससे कहा तुम 'एग्नेस' हो
फ़्लोरल प्रिंट वाली स्कर्ट और बारिश की ईयररिंग्स
समुद्र की खिड़की में 'एग्नेस'
ये मेहकती हुई ग़ज़ल मख़्दूम
घाव रूह के फूल हैं
ये तक़रीर जो तुम्हारी नज़रों से वाबस्ता है
'सराफा लड़की स्कूल' की छात्राएँ
'वह' लड़की : जिसने कहा था मुस्कराकर दिखाओ ना!
'क्लचर' वाली लड़की
डूबते हैं स्पर्श के पत्थर
तुम्हारी आँखों की सुरंग में बंद होता समुद्र
ओस के आईने में अलक्षित
रूठी हुई 'लड़की' अपनी ऐनक के पीछे रहती है
'आकांक्षा' में 'कां' पर लगी बिंदिया
एक लड़की चल रही है
'लड़की' : एक सुबह
तेरेज़ा की 'स्टॉकिंग्स'
अच्छा लिसन, मैं अपना क्लचर लैंसडौन में भूल आई हूँ!
मैं अलविदा ना कहूँगा तुम्हें तुम चाहो तो चली जाना
एक असंभव प्रेम के दौरान संगीत
समय ही प्रतीक्षा है
दिन, महीने, साल!
यह ज़िन्दगी के उन चंद छोटे अंदेशों में से एक है
तुम्हारे 'ऑनलाइन' होने का सितारा
गोत्रनाम तो भूल गया, किन्तु नाम था गायत्री
प्रेम के संताप से प्रेम
मिर्ज़ा-साहिबा : तीन वाक़िये
धत्त! मरे भूत से प्यार करेगी तू!
उन स्वप्नवत होंठों पर
जैसे मैं, जैसे तुम
किताब में गुलाब
हौंसलों नहीं राहतों के दरमियां
दो नावों के दो किनारे
मन के मानचित्र पर कहाँ होती है कोई विषुवत रेखा
आपका कोई नहीं कोई नहीं दिल के सिवा
हमारे बीच बारिशों का परदा है
मैं टहलूँगा तुम्हारे भीतर कोहरे की तरह
जो एक बारिश की बेवक़्ती है
नमक की मीनारें समुद्र को पुकारती हैं
घर में अकेली लड़की

और मैंने भी तो

नेत्रहीन होमर
एक महाख्यान की खोज में
दूर-दिगन्त तक नज़रें दौड़ाता था
जबकि वो ख़ुद देख नहीं सकता था।

बहरा बीथोवन
दुनिया के सबसे सुंदर स्वरों को चुनकर
आठवीं सिम्फ़नी रच रहा था
जबकि वो ख़ुद कुछ सुन नहीं सकता था।

काफ़्का तपेदिक का मरीज़ था
और उसके नसीब में
महज़ छोटी-छोटी साँसें ही बदी थीं
इसके बावजूद उसके उपन्यास
दम फुला देने वाले लंबे-लंबे वाक्यों से भरे हैं।

और, मैंने भी तो लिख डाले हैं
प्यार के इतने अनगिन तराने।

प्रेम पत्र

इसलिए नहीं
कि तुम लिखती थीं कविताएँ!

ना इसलिए कि तुम्हारी आँखों में था
सजल सम्मोहन और आवाज़ में
प्रतीक्षा का ताप

या इसलिए कि अपने दुपट्टे में
सम्हालती थीं तुम फ़ीरोज़ी लहरें
और यूँ चुराती थीं बदन
मानो मन पर भी
पहना हो कपास

और ना इसलिए कि
कांस की सुबहें
और सरपत की सांझें
तुम्हारे पूरब-पच्छिम थे

जल में तुम्हारे प्रतिबिम्ब-सी थी
वह पुलक, जो हमेशा तुम्हारे साथ
चली आती थी, चकित करती मुझे

जब गूंथती थीं चोटी तो
हुलसते थे चंद्रमा के फूल,
जिन्हें बड़ी बेतक़ल्लुफ़ी से
पुकारती थीं तुम रजनीगंधा

और कांच की चिलक जैसी
मुस्कराहट तुम्हारी लांघ जाती थी देहारियाँ
जबकि अहाते में ऊँघता रहता था
दुपहरी का पत्थर
लेकिन इन सबके लिए

भी नहीं

ना, इसलिए नहीं कि
इतनी दूर से इतनी देर तलक
सोचा था मैंने तुम्हें कि मेरी सोच में
जैसे एक डौल बन गया था तुम्हारा,
एक आदमक़द तसव्वुर,
जिसकी एक तस्वीर बन गई थीं तुम
अंतत: जब कई दिनों का धान पका
ना, इसलिए भी नहीं

इसलिए तक नहीं कि
इतनी कोमलता से पुकारा था तुमने
मेरा नाम कि मैं रूई का फ़ाहा बन गया था
भींजा हुआ और बारिश मेरी छत थी
इसलिए तक नहीं
बल्कि इसलिए कि
कोई 'इसलिए' नहीं था
दिसंबर के शब्दकोश में
उस दिन, जब मिले थे हम
केवल गाछपकी प्रतीक्षा थी
धूपधुले वर्षों के / शहद से भरी

कि जो मैं न होता तुम्हारे बरअक्स
और तुम मेरे तो ढह जातीं नमक की मीनारें
और पाला-सा पड़ जाता रेशम और रोशनियों पर
और एक सेब की ओट हो जाती पृथ्वी
और दूरियों की बर्फ में गलती रहतीं
मेरे हिस्से की तमाम फरवरियाँ

कोई 'इसलिए' नहीं था

केवल एक स्वप्न था
किंतु स्वप्न कोई कारण तो नहीं होता
केवल एक विकलता थी
जिसके कोई वर्णमाला तक नहीं

और केवल यह नियत था कि मैं उचारूँ
तुम्हारे नाम का ध्रुवतारा

हर बार जब खुले
भोर की गाँठ

रंगरसिया

मैंने उससे पूछा, आज क्या पहना है तुमने।
उसने कहा, तुम्हारी कल्पनाओं का पश्मीना।
मैंने कहा, इतना झीना लिबास पहनना ठीक नहीं।

वह लजाकर मुस्कराई होगी।
मैंने कल्पना में देखी: / उसके कपोलों की ललाई।

मैंने कहा, सुनो तुम्हारे लिए
एक बैंजनी चूनर ली है,
अंगुलभर चौड़ी रेख वाली लहरिया।
ज़रा देखो तो ओढ़कर।
उसने कहा, बैंजनी झांई से
देह ताम्बई पड़ जाए मेरी / तो फिर मत कहना।

अबकी मैं मुस्कराया।

मैंने कहा, इतनी देर तलक
आकाश में झाँकने का मतलब?
नील उतर आया है आँखों में।
उसने कहा, सच्ची? मुझे तो लगता था
मेरी आँखों के बाहर कोई आसमान नहीं।

और तब, कल्पना में देखा मैंने:
धनक के फूल-सा लालसा का कनेर,
उसकी नीली आँखों में।
मैंने उससे कहा, हरे में स्याह घुल जाए
तो काही रंगत होती है,
तुम पर ख़ूब फबेगी काही रंग की कुर्ती।
उसने कहा, काही पनीला पड़ जाए तो
धानी हो जाती है रंगत।
मैं तो लूँगी धानी दुपट्टा ही।

मैंने कहा, इतनी सुर्ख लाली
क्या अच्छी लगती है होंठों पर?
उसने कहा, पलछिन में कत्थई पड़ जाएँगे गुलाब
जो निमिषभर और सीझे ताप में।

मैंने कहा, कपासी सलवार और कुसुंभी कुर्ती पहनकर
कभी-कभी हरसिंगार सरीखी लगती हो तुम।
उसने कहा, आधी रात हरसिंगार के फूलों की बरखा
कभी देखी है तुमने?

मैंने कहा, तीतरबानी मौसम है।
उसने पहन ली- सुग्गापंखी सलवार।
मैंने कहा, किरमिज़ी करवट है।
उसने पहन लिया- सुर्खाबी लहंगा।

मैं रंगरेज़ था, उसका रंगरसिया / और वो : मेरी रसप्रिया।

मैं बनूँगा गुलमोहर

अच्छा सुनो,
यदि प्रेम हो,
तो संकोच न करना।

कह देना नि:शंक: "मैं प्रेम में हूँ!"
मुझसे न कह सको तो
कह देना किसी दरख्त से
या मुझी को मान लेना,
अमलतास का एक पेड़।

कह देना
क्योंकि कहना ज़रूरी होता है
होने से एक रत्ती अधिक
एक सूत ज्यादह

होना यूँ तो मुकम्मल है पर नाकाफ़ी
मुकम्मल काफ़ी भी हो
ये ज़रूरी तो नहीं!

अपने को पूरे से ज्यादह बनाना
अपने होने को कहना
कहने के चंद्रमा से उसे आलोकना
दीठ को देना एक दीपती हुई दूरी
थोड़ा दूर तलक व्यापना।

क्योंकि सबसे अकेला वो होता है
जो होता है अकेला अपने प्यार के साथ
उसे कह देना यूँ कि तारे तक आ जाएँ उसकी ज़द में
सुदूर से भी परे झपकाते पलकें
अपने अकेलेपन को एक बेछोर पसार देना
क्योंकि और अकेला हो जाना बेहतर है
केवल अकेला होने से!

मत रखना दुविधा
कह देना कि प्यार है
मुझसे न कह सको तो
कह देना किसी दरख़्त से
या मुझी को मान लेना
चिनार का एक पेड़!

ये एक दस्तूर है कि राज़दार बनें दरख़्त
और ठहरें रहें ख़ामोश हज़ार आवाज़ों और तरानों के साथ
के ये एक रवायत है।

तुम्हारी आँखों में
परिंदों की विकल वापसी से भरी सांझ है
उनके लिए मैं बनूँगा नीड़
तुम्हारे कानों के नीले छल्ले
नदियों की नींद में कांपते हैं
उनके लिए मैं बनूँगा लहर

जब प्रेम में होओगी तुम और
कहना चाहोगी अपना होना
मैं बनूँगा गुलमोहर।

चाहना का गीत

मुझे ‘चाहना’ है तुम्हारी
अथाह
अशेष
बेछोर।

पर तुम्हें चाहता
उतना भर ही हूँ
जितना तुम चाहती हो
कि तुम्हें चाहूँ।

मैंने अपनी ‘चाहना’ को
तुम्हें सौंप दिया है
जबकि उस पर
मेरा भी कोई
नियंत्रण नहीं।

तुम जितना प्रवेश दोगी
दाख़िल होऊँगा
तुम्हारे भीतर
उतना ही।

मैं चाहता तो
‘पूरा’ हूँ तुम्हें
काश तुम भी चाहो
मेरी ‘पूरी’ चाहना।

तुम अधूरे के समुद्रतट पर
खड़ी हो जबकि पाने को
इतना कि ‘पूरा’ भी

‘पूरे’ से कम है।

तुम्हारी प्रतीक्षा के समुद्र तट पर

(गैब्रिएल गार्सीया मार्केज़ का नॉवल 'लव इन द टाइम ऑफ़ कॉलरा' पढ़ने के बाद)

एक सफ़ेद गुलाब स्वप्न देखता है।
स्वप्न में सिहरता है
हरी सुइयों का एक समुद्र।

जबकि तुम ओस भीगी
अपनी त्वचा के तट पर
रहती हो प्रतीक्षारत।

तुममें स्थगित होने के बाद भी
शेष था बहुत जीवन
जिसे चुनता हूँ मृत्यु से लौटकर।

अनगिन दिनों के सफ़ेद फ़ीते
मेरी नींद में तैरते हैं।
मैं देखता हूँ एक आईना जिसमें
तुम अपनी कसक भूल आई थीं
जैसे पिछली सदी के वसंत में
अपनी देह की गंध।

विस्मृति और व्यतीत के देश से
(जैसे पूर्णता से, अग्नि से, मृत्यु से)
कोई वापसी संभव नहीं
फिर भी लौटता रहा हर बार
अपनी स्मृति के रेतीले सीमांतों पर
सीपियों की भांति सम्हाले रहा तुम्हें।

मैं ढहता रहा वायलिनों के लाइटहाउस की सीढ़ियों पर
रातों को रचता रहा तुम्हारे लिए किसी असमाप्त सेरेनेड की तरह
कच्चे बादाम की कड़वी गंध में खोजता रहा तुम्हें
तुमसे हमेशा, हमेशा दूर रहा इतना
कि तुम्हें पाने की गुंजाइश बनी रहे।

सदी के इस छोर से उस छोर तक खिंची थी
पिघले शीशे की एक अभेद्य दीवार
सिटी ऑफ़ वायसराय की छतों पर घोंघों की तरह
दम तोड़ देती थी सांझ की धूप।
दलदल निगल जाता था मेग्देलेना नदी की जीभें
और घड़ियाल हड़प जाते थे तितलियों को।

तुम्हारे सफ़ेद स्कर्ट के एक सिरे की छाँह
मेरी धमनियों में महीन कोहरे की तरह टहलती रहती
और ढांप देती मेरे सफ़ेद गुलाब की साँसें।
फ़रमीना, मेरे हिस्से की रातें कभी नहीं भूली थीं वह रास्ता
जो तुम्हारे सफ़ेद गुलाब के स्वप्न तक पहुँचता है।

और नावें एक दिशाहीन यात्रा पर
निकल पड़ती हैं।
जैसे संभव ही न हो समुद्र।
तुम्हारी प्रतीक्षा के समुद्र तट पर खड़े होकर
वक्त को उम्र बनते देखा मैंने
उम्र को याददाश्त।

जो नियत था, घट चुका।
किन्तु अपनी प्रतीक्षा के अथाह समुद्र को
अभी कहाँ उलीच पाया हूँ मैं
मेरी 'क्राउन प्रिंसेस'!

नौका को नदी में उतारो तो

तलुओं पर सहलाऊँगा
स्पर्श का आलता
जो अपनी ये प्रतीक्षाएँ
मुझे सौंप दो तुम!

खिड़की से झरने की तरह
टूटकर गिरो तो बाँहों में
तुम नदी हो तो बहोगी भी कैसे
बिना कोई तटरेखा?

सुनो, भेद नहीं करता है
चुम्बनों का चंद्रमा
गुहा गह्वर पर्वत पठार
रेत लहर सकल / केवल उपत्यकाओं
का प्रेयस नहीं / तुम्हारा राकापति

तुम्हारे होंठों का पश्चिम
विमुख क्यों हो क्यों न हो दक्षिण
आज अस्ताचल की दिशा

स्पर्श का दुकूल पहनना है
धनुष से प्रत्यंचा उतारो तो
नौका को नदी में उतारो तो

मुझे तुम्हारी नींद से बहोत रश्क़ है

तुम अपने को
नींद की बाँहों में
पूरा सौंप देती हो

तुम्हारी नींद से मुझे
बहोत रश्क़ है

कभी मुमकिन हो तो
यही माँगूंगा दुआ
कि मुझे तुम्हारी
नींद बना दो

तुम सो जाना मेरे भीतर-
मुंदी पलकें खुले होंठ भूली देह

मैं जगता रहूँगा पूरी रात
(जैसे जागती है नींद)
तकता अपलक:
चंद्रमा की साखी में
नींदों का देवता

अपनी नदी से कहो बदले करवट

त्वचा के तटबंध के बीच
बहती है तुम्हारी देह की नदी,
जिसमें आज मेरे 'स्पर्श' की हिलोर

एक झीना-सा परदा कांच का,
जिसके पीछे तुम रहती हो अनछुई,
मेरे स्पर्श से काँप रहा है

तुम्हारी देह की रोमावलियों में
एक जुगनू है मेरा स्पर्श,
एक टूटकर गिरता तारा,
भाप के वन में एक चिनगारी,
तुम्हारा स्थगित दावानल

हमारी बारिश में तुम्हारा धनक
जहाँ हठात झुकता है ऐन वहीं पर हो
हमारे प्रणय की ध्रुव पंक्ति

मेरी भाषा-सी अधूरी मत रहो
तुम्हारे समर्पण जितना संपूर्ण एक वाक्य
लिखना है मुझे अपनी अंगुलियों से
तुम्हारी पीठ पर अपनी नदी से कहो
बदले करवट
शताब्दी का पहला शुक्र तारा जोहता है बाट
बनो ज्वार ओ लहर जिस पर
रीझे चंद्रमा तिरें हंस

तुम तो शहद का छत्ता हो

तुम तो
शहद का छत्ता हो,
मीठे पानी की
एक झील

मैं हैरान हूँ,
तुम्हारे मन का गुड़
अब तक किसी ने
चखा नहीं

कितना अकेला,
कितना उदास
कर देता होगा ना,
इतनी मिठास से
भरा होना!

बार-बार भरना
रिस जाना हर बार
- अनचखा

अच्छा सुनो,
जीभ की नोक से
चखना है मुझे
तुम्हारा रस

मेरे लिए
बनोगी ना
लहर।

तुम मुझे मेरा नाम लेकर पुकारो

वह हमेशा
मुझे मेरा नाम लेकर पुकारती थी।

मेरा पहला नाम:
मेरी सुपरिचित संज्ञा।

वह हमेशा मुझे सर्वनाम से
संज्ञा बनाती। संज्ञेय बनाती।
गहरे संदर्भ भरती मुझमें।

बहुधा उसके पूरे-पूरे वाक्य
केवल एक शब्द के होते
और वह एक शब्द मेरा नाम होता।

वह मेरे नाम को एक शब्द,
एक वाक्य, एक संज्ञा,
एक पुकार और एक संदर्भ की तरह
एक साथ बरतती।

प्रणय की कला में
'उपाय-कुशल' जान पड़ती थी वह।

मैंने उससे पूछा,
तुम यूँ अकारथ मेरा नाम क्यूँ पुकारती हो?
उसने कहा, मुझे अच्छा लगता है
तुम्हारे नाम का उच्चार।

यह एक सम्वादी स्वर की तरह
मेरे भीतर अडोल बना रहता है।
मैं उसे जब-तब सहलाती रहती हूँ।

मैं उससे कहता,
तुम्हें पता है किसी को नाम लेकर पुकारना

उसके भीतर के फेन-समुद्रों का आवाहन हैं?
वह मुस्कराकर कहती, ख़ूब जानती हूँ,
इसीलिए तो पुकारती हूँ!

पता नहीं, वह कितना जानती थी
कि रति-केलि में एक फ़ंतासी यह भी होती है:
चरमोत्कर्ष के रजत-शिखरों पर पहुँचकर नाम पुकारना।

संसर्ग के क्षण में बहुधा प्रेमी
अपनी प्रेयसियों से याचकों की तरह
अनुनय करते- स्खलन की उपत्यका में
ढहते हुए- कि तुम मेरा नाम पुकारो।
कि अभी मुझे मेरे नाम से पुकारो।
और तब प्रेयसियाँ सूखे होंठों पर
जीभ फेरकर उनका नाम पुकारतीं।

तब वह विश्रंखल उच्चार
एक विशिष्ट आभा से दीप्त होता:
एक निपट संज्ञा से परे।
नाम-रूप की ओट में,
वह आखेट का एक आवाहन भी होता।
आखेट के अनवरत का।

उसका यूँ नाम लेकर पुकारना
मुझे विचित्र तरह से विकल
कर देता था हर बार।

काम्य की कल्पना से कीलित।
और अनुराग से अनुरक्त।

और तब मेरा जी करता
कि उससे कहूँ कि भले कोई अर्थ ना हों मेरे नाम के
लेकिन तुम पुकारती रहो मुझे।

पुकारो मेरे भीतर के रजत-शिखरों
और चंद्रहासों को।
पुकारो मेरी अमावस के
शुक्र तारे को।
तुम मुझे मेरा नाम लेकर
पुकारो।

और वह एक निष्कवच मुस्कराहट के साथ
फिर फिर मेरा नाम पुकारती–
सर्वनाम से मुझे संज्ञा बनाती,
संज्ञा से असंज्ञेय–
शिखरों से उपत्यकाओं तक
फिसलते।

प्यार में दुबलाई लड़की

चाँद से संवलाई
लड़की!

धूप में
दमकती है
ताप से
हुलसती है

प्यार में दुबलाई
लड़की!

प्रणय पुरुष का एकालाप है!

[महाकवि के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' पर एक बढ़त]

प्रेम में आकंठ डूबी थी वल्कल वस्त्रों वाली वह वनकन्या। ऋषिवर पधारे इसका भान ना रहा। वे रुष्ट हुए। शाप दे दिया कि "जा जिसके विचारों में तू खोई है वो ही तुझे भूल जाए। कि गुम जाए उससे तेरी याद की अंगूठी!"
इससे बढ़कर कोई और शाप नहीं हो सकता था कि:
"कि जा तू यूँ ही प्रेम में डूबी रहे, पानी की मछली की तरह और छतरी के अंतस्तल की तरह बारिश छू भी न सके एकबारगी तेरा मन।"
"कि जा वो तेरा हो, ठीक वैसे ही जैसे जनपद की ग्यारहवीं दिशा में समय के नौवें पहर धनक का तीसरा छोर धरती का होता है।"
"कि जा तू चाहकर भी उसे खो ना सके, श्वास के चरखे पर उसका स्मरण गूँजता रहे तेरे भीतर और तेरा मन कपास का हो।"
"कि जा तू प्रेम में हो और प्रेम तेरी आत्मा की भोर का अलभ्य तारा!"
कालिदास की नायिका सिहर उठती है इस शाप से जैसे प्रथम फाल्गुन की वर्षा से पोखर में काँपती है जलकुम्भी।
किंतु मेरी नायिका मंदस्मित से कहती है: "हाँ, ऐसा ही हो, ऋषिवर, ऐसा ही तो है!"
"मेरे प्रणय के चैत्र की पहली तिथि से, वैसा ही तो शाप है!"
अभिमानिनी है किंचित गौरव से कहती है मेरी नायिका:
"जब कुमार के अंक में थी, तब भी मेरा कहाँ स्मरण था? मेरे रूप में भूले थे। संसर्ग के आखेट में मेरी संधियों और परिधियों से कितनी दूर भटक आए थे!"
"खोने को क्या है मुझे पाया कब था। भूलने को क्या है याद में ही कब थी। अपने प्रणय में भी एकाकी, अभिसार में अस्पृश्य थी। धूप के देववस्त्रों ने छुआ भी नहीं वैसी असूर्यम्पश्या।"
"मेरा कौमार्य ही कब भंग हुआ, मैं परिणीता ही कहाँ हुई?"
"प्रणय पुरुष का एकालाप है!"
"मैं कहाँ सम्मिलित हुई, मुझे छू ही कहाँ पाए कुमार!"
"हाँ, ऐसा ही हो, ऋषिवर, ऐसा ही तो है!"
और तब, अपने घुटनों पर झुकते हैं दुर्वासा और स्पर्श करते हैं चरण मेरी प्रणयिनी के, जिसके अटूट विप्रलंभ के ताप ने गला दिया था उनका शाप।
महाकवि के आख्यान से पृथक है मेरी शकुंतला की कथा!

स्वांग है उसका धनुष!

पहला हमेशा पहला होता है
आख़िरी कभी आख़िरी नहीं होता!

पहला, इतिहास की छाती में
गड़ा कांटा होता है
नियति की तरह अटल
पहला घाव हमेशा
पहला होता है!

जबकि आख़िरी का
कोई आख़िर ही नहीं
कोई इंतेहा ही नहीं
कि इब्तिदा इब्तिदा होती है
मगर आख़िर बेइंतहा है!

मैं उसका पहला था!
उसके जीवन का पहला पुरुष!

वो जानती थी कि
उसने अपना पहला प्रेम
पहली प्रतीक्षा, पहली हार
पहला चुंबन, पहला समर्पण
सब मुझे सौंप दिए थे

तब भी पुरुषोचित दर्प से
मानो किसी उपनिवेश के अधिकार से
मैंने पूछा:
"क्या मैं तुम्हारा पहला हूँ?"

और तब,
उसने आहत हुए बिना,
मुस्कराकर प्रतिप्रश्न किया:

"क्या मैं हूँ तुम्हारी आख़िरी!"

मेरे पास जवाब ना था
कभी किसी पुरुष के पास
कोई जवाब नहीं होता है!

पुरुष आखेट करता है
स्वांग ही उसका धनुष है!

और तब, उसने कहा:

"तुमसे पहले मैं अनदेखी थी
अनछुई, अभेद्य
तुमसे पहले मैं वह नहीं थी
जो आज तुमने मुझे
बना दिया है

तुम मेरा पहला शुक्र तारा हो
जो पहला हो, क्या वो
पहला होने की सनद भी
चाहता है?
पहले होने का
हलफ़नामा?

तो सुनो, मुझे चाहिए
तुम्हारे अंतिम होने की शपथ
कि मैं तुम्हारी आख़िरी हूँ!
कि तुम हर बार
जब मेरे भीतर मर जाओ
तो वो तुम्हारी अंतिम टूट हो!
तुम सो जाओ मेरे भीतर तो
अपने स्वप्नों की मृगया में भी
तुम मेरे ही रहो

मैंने स्वयं को
तुम्हें सौंप दिया है,
तुम मुझे पा लो,
मुझे बस तुम्हारा
अंतिम अर्धसत्य
चाहिए!"

मैं मुस्करा दिया
मेरे पास कोई
उत्तर ना था

पहला हमेशा पहला होता है
आख़िरी कभी आख़िरी नहीं होता!

मैं उससे कहना चाहता था
पर नहीं कहा

पुरुष प्रश्न नहीं चाहता
उत्तर चाहता है, अधिकार चाहता है
जबकि वह स्वयं दे नहीं सकता
अधिकार!

पुरुष आखेट करता है
अर्धसत्य ही होता है
उसका कवच!

चेष्टा के चंद्रमा से निस्तेज

कांच के झरने से टकराकर
लौट आना मगर इसलिए नहीं
कि लौटकर आने के भीतर
कोई खिड़की है चमकीले दिनों की
लीक है बस लौट आना है
लौटकर न आ सकने
जैसा ही रक्तहीन।

कहीं कुछ रखकर भूल जाना
(और फिर यह भी भूल जाना
कि कहीं कुछ कैसे रखा जाए)
ज़रूरी है अपने भीतर
जगह बनाने की तरह।
बस यही कि जगह बनाने की कोशिशें
भी तो घेरती है बहुत जगह।

सितंबर के कंधे पर काँपती रहीं लालटेनें
चिनगारियों को जोड़कर बनाया गया पुल
ठंडे इस्पात की गंध पर पिघलता रहा।
गहरे कुएँ में रोशनी की लाल लकीरें
मिटती रहीं घटती रहीं चाँद की कलाएँ।
तृषा तो थी पर उसका कोई तल न था
और जहाँ तल था वहाँ नहीं था
कोई समतल और बस इसी तरह
आवाज़ खोकर रह गई।

और बस चाँदनी की मीनारें थीं
जो पुकारती रहीं समुद्र को।
अकारण ही जलती रही
कोहरे की मोमबत्ती
ढलती रही अपनी ही चेष्टा के

चंद्रमा से निस्तेज।

बारिश का लिहाफ़ भी नाकाफ़ी था

और जब बहुत देर हो चली
तो तुम्हारी आवाज़ को वहीं
रात के रूमाल पर टांक दिया मैंने
आलपिनों से जैसे अलबमों में
तितलियों के पंख सजाते हैं बच्चे

चाँद के चश्मे से
रात भर रिसती रही वह
मैं भरता रहा रात भर

सहर होते होते तुम्हारी चुप्पियों की
एक मीनार बन गया था मैं
गूँज से भरपूर कान लगाकर
तुमने सुना था ना

इसी तरह मेरे भीतर चली आई तुम
पूरे की पूरी इतनी कि बारिश का लिहाफ़ भी
नाकाफ़ी था जहाँ भींज रहे थे हम

तुम्हारी मुस्कराहट एक खिड़की थी

[दीप्ति नवल के लिए नौ कविताएँ]

वह दी प ती है

वह दीप्ति है।

सलोनी-सांवली।
मछली की नींद-सा पारदर्शी है
उसका नेह।

जान ही जाओगे जब तुम्हारे नाम लिखकर
नहीं भेजेगी तुम्हें चिट्ठी।
पाँव में बाँधेगी बारिश,
मेंह की डोरी में बादल की झालर।
काजल की तटरेखा से लौट आएगी
उसके बेख़याल देखने की बाढ़।
जो ना काढ़ेगी काजल तो टूट न जाएँगे
कितने ही किनारे!

तानपूरे के शीशम वन में बैठी बदन चुराए
गाएगी मालकौंस।
उसकी पीली किनार की साड़ी में डूबेगी
सरसों की सांझ,
जिसके भीतर धानी ज्वार।
कर्णफूलों पर दमकेगा जब
स्मित का चंद्रमा
तो होंठों के कनेर खिंच जाएँगे
आकर्ण।

सूने कमरे की दीवार पर
उसकी मुस्कराहट की खिड़की
वैनगॉग के सूरजमुखी में पीली चाँदनी भरेगी।

दूर दिशा तक गूँज आएगी उसकी हंसी की भोर।

तालू के नाद से उच्चारेगी जब तुम्हारा नाम
तो क्या हुलसोगे नहीं?
करेगी अनुनय तो क्या रीझोगे नहीं?
देह में लहर की लय लिए
वह चहकेगी, इठलाएगी।

'काली घोड़ी' पर गोरे सैयां संग
जब निकलेगी तो क्या चकित हो नहीं तकेगी
'सगरी नगरी।'

झाग के फेन-फूलों को हिमकिरीट की तरह
केश पर बाँधेगा उसका प्रियतम,
जब वह मुस्काएगी।
बाग़ में हरीतिमा का बिछला स्वप्न पुलकेगा,
जो वह झपकेगी पलक।

रेस्तरां में टूटकर गिरेगा धूप का धनुष,
जो लौटा देगी कॉफ़ी और बुलवाएगी अपने लिए
आइस्क्रीम का एक प्याला।

सफ़ेद कुर्ती में, लंबी-सी चोटी
बाएँ कंधे पर सम्हाले गाएगी कोमल गांधार।
आँसू पीएगी जब तक कि टूटता नहीं बाँध,
गलता नहीं पूस।

वह दी प ती है।
सलोनी-सांवली।
सहज-निश्छल।

पाखी की पुलक-सा पारदर्शी है
उसका प्यार।

मछलियों की गंध से भरे उस जज़ीरे पर

मछलियों की गंध से भरे
उस जज़ीरे पर
जहाँ बालू-बजरी का देश
पानी से हिला-मिला

पानी का काई से।

जहाँ मलाड की खाड़ी
अपने उधड़े हुए दस्तानों के साथ
बिछली रहती थी मढ आइलैंड को
वर्सोवा के कछार से अलगाते
नावों के पुल के उस पार।

जहाँ कोलियों की बस्तियाँ हैं
रोमन कैथोलिकों के गिरजे
मढ का किला, पाट वाडी
मोगारा का नाला, मनोरी की क्रीक
और, ईरिन्गल बीच पर जहाँ
संत बोनावेंचर का प्रार्थनागृह।

कोलीवाड़ा नहीं
पास्कल वाड़ी से भी आगे
भाटीगाँव के उधर
चाँदी की रेत के किनारे पर
मानसून की रातों में
काला लबादा ओढ़े एक साया-सा
जहाँ टहलता था इतने आहिस्ता-से
नम नमकीन हवा पर तिरते
कि क़बूतरों की नींद में भी
पड़ता नहीं था ख़लल।

बस ऊँघता हुआ समंदर
करवट बदलकर देखता था एकबारगी
और सो जाता था ओढ़कर
नमक की जरी वाला
लहरों का पश्मीना।

समुद्र को काई से
अलगाती थी रेत।
रेत को धरती से
अलगाता था दलदल
जो एक दफ़े निगल गया था
एक बच्चे की गीली हंसी
एक ऊंट की ख़ुश्क़ जीभें।

वर्सोवा की सैकड़ों छतों पर
जहाँ दिनों की सलाइयों ने बुने थे
धूप छांह के अनगिन पैटर्न
वहाँ केवल पोस्टल एड्रेस था तुम्हारा जहाँ पहुँचती थीं चिट्ठियाँ
अगरचे लिखा जाए उन पर तुम्हारा पूरा नाम सही सही
और चस्पा किए जाएँ बारह रुपयों के टिकट।

लेकिन तुम हमेशा रहती थीं दूसरे छोर पर
नावों के पुल के उस पार
अपने दूसरे घर में अपने तमाम दूसरे घरों की तरह
जबकि हर घर एक उनींदा पड़ाव था।
जहाँ मोमबत्तियाँ सुबकती थीं
काठ के दरवाज़े खड़खड़ाते थे
और क़तार में बिछी रहती थीं बेन्चें
देवताओं, अपराधियों और प्रेमियों
के लिए समय के अंत तक
प्रतीक्षारत।

मुझे भी जाना है-
वहीं पर मुल्क है
मेरा भी तो।

जनवरी के दूसरे छोर पर

पंखों की हर फड़फड़ाहट अपना सुर भूल जाएगी
और हर चेहरा बन जाएगा संध्या का शोक
जो अगर तुम ना हुई जनवरी के दूसरे छोर पर।

कितना तो अचरज है ना
कि तुम मेरी आत्मा की सम्मोहक धुंध में
भर सकती हो जाने कितने ही रंग
बर्फीले आकाश के तले एक दूर देश में
महज़ साँसें लेकर।

और तुम हमेशा से ही वहीं पर थीं, है ना?
केलोन्ग की सड़क पर पाले से सफ़ेद पड़ चुके पहाड़ों
पर खोलते हुए सड़कों के रिबन

और आल्ची के मठ में जहाँ नंगी टहनियों वाले
दरख़्तों ने तुम्हारा अभिवादन किया था।

क्या तुम एक आईने के लिए आईना नहीं थीं
जिसके भीतर काठ का एक सलीब
नमी और सीलन से भरी अपनी आत्मा
तलाश रहा था?

तुम यात्री थीं एक यायावर और पथिक
इकट्ठा करते चलती रहती थीं
कहानियाँ और तस्वीरें
बारिशें और जुगनू
बर्फीले तूफ़ान के समक्ष
एक जलती हुई दियासलाई!

तुम काला लबादा ओढ़े एक एन्जेल थीं
वैरागन के वेश में पर्वतों की एक वनदेवी
तुम अपने चेहरे को सफ़ेद रंग से पोत लेती थीं
और एक क़िरदार निभाकर उसे फिर टांग देती थीं
वुडन बीम पर वहीं लाल लालटेन के पास।

और जब गर्मियों के तमाम दिन
जले हुए सूरजमुखियों की तरह
झुलसकर कोयला बन जाते
तुम हरीतिमा की लहर थीं
हरी साड़ी पहनकर झूमती थीं हवा में
हरे दरख़्तों की तरह।

समुद्रों के भीतर हर यात्रा खो देगी अपने किनारे
और समय की बहरी मीनार में
कांसे की तमाम घंटियाँ हो जाएँगी गूंगी
जो अगर तुम ना हुई जनवरी के दूसरे छोर पर
स्ट्रीट लैम्प के लिए टिमटिमाते
किसी सितारे की तरह।

जहाँ रहती थीं तुम

जब यह दुनिया–

धूल से भरी खिड़कियाँ थीं
और अंधड़ में काँपती पत्तियाँ
और बर्फ़ में दफ़न बॉस्केटबॉल कोर्ट
और झुटपुटों के समक्ष धुंध की एक दीवार
और कोई अफ़वाह कोई अजूबा
और भव्य वीरानों में दोलता हुआ
कोई एक बेठोस साया।

तब तुम चल रही थीं–

पत्तियों पर बर्फ़ पर रेत पर
ख़ुद अपनी परछाई पर।

और पूरे समय गुनगुना रही थीं
किसी सोनचिरैया की तरह।

और मुस्करा रही थीं
जैसे कि वो तमाम बर्फ़
किसी दूसरे ही गोलार्ध में
गिर रही हो।

तुम्हारी मुस्कराहट एक खिड़की थी
जिससे मैं देखता था आकाश
और आकाश का अनंत नील।

और तुम्हारे कैलेंडर के सभी दिन जहाज़ों की तरह थे
एक अनवरत वसंत की ओर तैरते हुए
जहाँ रहती थीं तुम।

मत्स्यगंधा

हिरामन की देह से कई दिनों तक नहीं गई थी 'बघाइन' गंध। मेरी देह भी कई महीनों से बनी हुई है 'मत्स्यगंधा।'
बम्बई की सबसे पच्छिमी बाँह पर सींझती वह फ़रवरी की दोपहर थी। उमस, कितनी उमस! और खारी भाप के भपके! वर्सोवा से चलो और मलाड से मुड़ो तो मारवे गाँव के आगे एक पतली सी पट्टी मढ आइलैंड की ओर चली गई है: कितने ही किनारे वहाँ बिछले पड़े हैं- 'चाँदनी का

किनारा', 'ईरिंगल का किनारा', 'अक्सा का किनारा', 'हामला का किनारा'।
मछलियों की गंध से भरे उस जज़ीरे पर जहाँ बालू-बजरी का देश पानी से हिला-मिला पानी का काई से। वहीं कोलियों की बस्तियाँ हैं, खाड़ी का उधड़ा दस्ताना है, रोमन कैथोलिकों के गिरजे हैं, मढ का क़िला है। और, संत 'बोनावेंचर' का प्रार्थनागृह!
बालू में पिंडलियाँ धंसाएँ जहाँ मछुआरों के बच्चे बिना टप्पे वाला क्रिकेट खेलते हैं। जहाँ नमक की जरी वाला समुद्र हहराता है।
वहाँ, धूप में सूखती हैं मछलियाँ। और त्वचा पर ऊष्मा के प्रसार सी जम जाती है मछलियों की गंध। हलक़ में कांटा-सा फंसा हो जैसे, भीतर धंसी साँस वैसे दम तोड़ देती है।
जहाँ: जल-थल जनजीवन, मछली के पुत्रों-सा मानुष, मानुष की रक्तशिराओं-सी भूमि। आधा दलदल, आधी धूप। भूरी छाँह, गीली राह।
दीप्ति के साथ मढ आइलैंड के चायघर में कहवा पीने गया था फ़रवरी की उस उमस भरी दोपहर। दीप्ति ने कहा, हम वहाँ सी-फ़ेसिंग मेज़ों पर बैठेंगे, चायघर के मैनेजरान बोले, उस तरफ़ का एक्स्ट्रा पैसा लगेगा। बम्बई में खुली हवा में साँस लेने और समुद्र की लहर गिनने के भी पैसे लगते हैं, पर मछलियाँ ही बेभाव हैं। धूप में सूखती रहती हैं ठूँठ की तरह।
मैंने दीप्ति से कहा था, मुझे समुद्र की लहर छूना है। उन्होंने कहा, तुम जाओ, वहाँ बहुत भीड़ है, मैं ना जा सकूँगी। मैं दौड़ते हुए गया। जुराबें निकालीं, जूते उतारे। जबकि समुद्र ने जुराबों की तरह उस जज़ीरे को पहन रक्खा था, जूते की तरह तैर रहे थे उस पर जहाज़।
बाद उसके, फिर घर लौट आया। जिन जूतों को पहनकर गया था, उन्हें कपड़ों में तह करके रख दिया संदूक़ में। भूल गया, जैसे भूल जाता हूँ अक्सर कहीं पर रखकर छाता, कहीं पर बारिश।
गए शनिच्चर को निकाला वही जूता। जुराबें खींचकर पहनीं, जूतों में डाले पाँव तो तलुओं पर महसूस हुई बालू, बजरी, रेत। पाँच माह बासी हो गई है फ़रवरी, लेकिन जूतों में आज भी बम्बई की रेत!
रेत से मुझे याद आया समुद्र, समुद्र से मुझे याद आई मछलियाँ।
और तब मुझे याद आई वह गंध, जो इतने समय से मेरी छाती, बगलों, घुटनों, पिंडलियों पर ठहरी थी, लेकिन उसे चीन्ह नहीं पाता था। वो मढ गाँव की मरी हुई मछलियों की गंध थी। हिरामन की देह से कई दिनों तक नहीं गई थी बघाइन गंध। मेरी देह भी कई महीनों से बनी हुई है मत्स्यगंधा।
जल देखूँ तो जगता है ज्वार, जाने कितनी मछलियों के अंतिम नि:श्वास अपने भीतर समोए भाप की सड़कों पर तैरता रहा इतने इतने दिन!

कैसे हो पागल जैसा ये बादल

हरी धूप का टिप्पा है,
घास पर पीली-सपनीली भाप-उसांस
और 'उसने' दो चोटी बांधी है

चोटियों में सफ़ेद रिबन के फुंदे
सफ़ेद रेशम की रिमझिम

‘उसने’ सफ़ेद कमीज़ पहनी है,
वैसी ही काट की कॉलरों वाली,
जैसी ‘उसके’ प्रेयस ने पहनी है

किया होगा दोनों ने ज़िद भरा लड़कपन का कोई वादा
कि एक ही रंग, एक ही चलन का लिबास पहनेंगे
छुट्टी के रोज़ जब बाग़ में मिलेंगे हम

कानों में ‘उसके’ सफ़ेद मोतियों की लटकन है
हद कि नाख़ूनों पर भी चाँदनी की धौली खिली नेलपॉलिश

क्यों ना हो, सफ़ेद लिबास वाली परी जो है ‘वो’

बाग़ में नन्हे खरग़ोशों से दोनों दुबके बैठे हैं
फिर घास मैदान पर मांडते अपनी पुलक के
अनगिन रेखाचित्र

एक जोड़ी दंतपंक्तियाँ धवल धूप में दीपती हैं
एक जोड़ी होंठों की दूरी पर
मुस्कराहट मानो अधरों का तिर्यक धनुष ना हो
कांच का एक आवारा चिलका हो
कौंधता चहुँओर

उस चिलके में निहारकर ख़ुद को देखते हैं वो
और खिलखिलाकर मुस्करा देते हैं

दिल में रोशनी का बित्ता है
मीठी गुदगुदाहटों की एक बाढ़
तिसमें बेख़याल बहते हैं वे
साथ में हम भी

और तब ‘वो’
अपने प्रेयस को काजल टीका लगा देती है
काजल की एक लंबी रेख
ताकि नज़र ना लगे
‘उसके’ प्यार को

और एकबारगी ही सही
यह लगता है कि इस लमहा
दुनिया-फ़ानी की तस्वीर पूरी ही सही

उसके रंग चटख औ खिले ही सही
और यह कहने को जी करे कि आख़िरकार
तराज़ू का कांटा कहीं थिर हुआ है
के अब वो डिगता नहीं
हर शै मुकम्मल है।

लड़की लड़के को 'कोलंबस' कहती थी

जाने क्या होता,
वे दोनों एक-दूसरे को देखते
और मुस्करा उठते।

एक निर्दोष उत्फुल्लता
उनके दिलों में धूप के टिप्पे की तरह
कुनमुनाती रहती।

जगहें कहीं नहीं थीं,
केवल उनकी मुस्कराहटों के अलबम थे
और बाग़, सड़कें, बेंचें, कमरे, रेस्तरां, बस अड्डे,
कुछ नहीं थे सिवाय एक पसे-मंज़र के,
जहाँ वे अपनी मुस्कराहटों का बूटा
रोप सकते थे।

कि दुनिया
एक बड़ा-सा परदा थी,
रेशम का झक सफ़ेद,
जिस पर वे टांकते थे
अपनी पारदर्शी मंद स्मित का
तिरछा धनुष।

कि कुछ नहीं करना था,
कुछ नहीं पाना था,
बस आँखों के किनारे ले आना था
आँखों की नावें, और मुस्कराना था:
तारों-सी दीपती दंत पंक्ति के साथ।

कि उसी की वर्णमाला में रचनी थी
अपनी कथा-गाथा।

लड़की लड़के को 'कोलंबस'* कहती थी
लेकिन जो दुनिया उन्होंने मिलकर खोजी
उनकी मुस्कराहटों का चंद्रमा ही तो
उसका जलपोत था।

[*फ़िल्म 'साथ-साथ' में फ़ारूख़ को 'कोलंबस' कहकर ही बुलाती थी दीप्ति]

अच्छा सुनो दीप्ति

अच्छा सुनो दीप्ति,
मैं ये तो नहीं कहने वाला कि इंतेहा फ़िदा हूँ तुम्हारी नायाब ख़ूबसूरती, हुस्नो-नज़ाकत पर
या तुम्हारा लड़कपन भी दिलफ़रेब है
या कि तुम्हारी बेमिसाल अदाकारी से मुतास्सिर रहता हूँ बहुत
या अचरज से भरा कि कैसे कर लेती हो इतना कुछ- नज़्में कहना, अफ़साने सुनाना, तस्वीरें उतारना, मुसव्विर का बाना पहनकर खींचना ख़ाके, भरना रंग
या यायावरी के रास्तों को सौंप देना अपने सांझ-सकारे
और इतना करके भी रहना ग़ैरमुमकिन, कि जैसे पानी पर हवा की अंगुली से खींची कोई लकीर हो, जिसके सिरे किसी और दुनिया में छूट रहे
या कि तुम एक सितारा हो, पर सबसे हसीन सितारा हो, ऐसा कहके तुमसे अपनी रफ़ाकत का एक डौल क्यूँ बाँधूं, कि वजहों की गठरी बहुत भारी होती है (जबके तुम्हारे कांधों पर पहले ही इतना बोझ!)
कोई वजह है भी तो नहीं सिवाय इसके कि तुम अच्छी लगती हो (और ये कोई तफ़्तीश नहीं कि तुम जवाब में कुछ न कुछ कहो, पूछ नहीं रहा तुमसे कुछ, बता रहा हूँ)
बस, तुमको देखा तो ये ख़याल आया के छतनार का साया हो, जिसके आग़ोश में गरचे गिरूँ तो ही पनाह
और यह कि तुम दी प ती हो, रत्ती भर भी इससे कम ज़ियादा नहीं, और सिवा इसके तुम्हें और होने को क्या है
सुनो, तीन फ़रवरी है आज, याद ही होगा। सालगिरह मुबारक हो।
प्यार।
चश्मेबद्दूर। (Touchwood)
[पुनश्च: उस दिन 'कथा' में हरी साड़ी पहने देखा था तुम्हें, बालों में गुड़हल का लाल फूल लगाये इंद्रधनुष लग रही थीं। तुम्हारी यादों के कितने मोरपंख सहेज रक्खे हैं मैंने, अब इसका भी क्या बखान करूँ!]

फ़ारूख़ शेख़ जैसा लड़का हो, दीप्ति नवल-सी लड़की

फ़ारूख़ शेख़ जैसा लड़का हो,
दीप्ति नवल-सी लड़की!

लड़का रुपये में बारह आने शरीफ़,
लड़की आटे में नमक जित्ती नकचढ़ी
लड़का नाप-तौल कर बोले,
लड़की ज़ुबान से कान काटे
लड़का दानिशमंद, लड़की हाजिरजवाब
लड़का सादी कमीज़ और घेर वाली पतलून पहने,
लड़की छींटवाली सूती साड़ी
लड़का कनटोपे सरीखे बाल रक्खे,
लड़की सिर नहाए तो नहीं बांधे चोटी

छुट्टी के दिन दोनों बाग़ में मिलें
घुटने जोड़कर बैठें
धीमे से, मुँह ही मुँह बतियाएँ
लड़का हाथ बढ़ा लड़की के कंधे पे रखे,
लड़की के कान की लवें ललाएँ
धूप में खिड़की सरीखी लड़की की पारदर्शी मुस्कराहट
कान के सफ़ेद मोती में झिलझिलाए।

हरी घास का बित्ता दूर जहाँ दमके,
लड़की की आँखें वहीं जमी हों
लड़का अपलक देखता रहे लड़की का एकटक निहारना
यूँ निरापद दूर देखने का उद्यम
जो क़ुरबत की तस्वीर हो।
लड़के की पुस्तक, लड़की का पर्स धरा रह जाए बेंच पर
लड़की का हाथ हौले-से लड़के की दाहिनी बाँह छुए
लड़के की अंगुलियाँ चश्मे की कमानी से खेले,
जो अभी इंद्रधनुष बन गया है उसके हाथों में।
और, उसकी हथेलियों पर
पसीने का एक पेड़।

तसल्ली हो, फ़ुरसत हो
शऊर हो, नफ़ासत हो

कहीं जाने की जल्दी न हो,
कुछ पाने की वहशत न हो
खो देने का गुमान तो दूर तक नहीं
दरमियाँ कोई ख़लल न हो
दूध-मिश्री-सा दोनों का मन हो
शरबती शाम हो
रात की सांवली किनार हो
दुपट्टे की दुपहर से खुलती।

फ़ारूख़ शेख़ जैसा लड़का हो,
दीप्ति नवल-सी लड़की
तभी हम कहेंगे चश्मेबद्दूर!

दुनिया तुम्हारी अनुपस्थितियों से भरी हुई है

उसने मुझे अपने दफ़्तर की तस्वीरें भेजीं और पूछा, "कैसा है मेरा वर्कस्टेशन!" मैंने कहा, "बलूत की मेज़ पर सफ़ेद बत्ती की रौशनी रेंगती है, दिन में कितनी बार तुम इस मेज़ को छूती होंगी? बहुत सुंदर है, वहाँ पर तुम्हारे स्पर्श की वह अदृश्यता, जिसे मैं अभी देख पा रहा हूँ।"
उसने मुझे अपने कमरे की तस्वीरें भेजीं और कहा, "ये देखो, मेरे घर की खिड़की से ऐसी दिखती है दुनिया।" मैंने कहा, "सूरज पीली रौशनी के एक लट्टू की तरह टिमटिमा रहा है। मैं उस जगह से देख रहा हूँ, जहाँ से तुम देखती हो। बहुत बहुत सुंदर है, तुम्हारा यह देखना, जिसे मैं देख पा रहा हूँ अभी!"
अबकी उसने तनिक खीझकर कहा, "ओहो, कहाँ से कहाँ चले जाते हो?" मैंने कहा, "प्रिंसेस, तुम्हें मालूम है रोलां बार्थ ने "अ लवर्स डिस्कोर्स" में क्या कहा है? उसने कहा है कि वेर्दर ने एक बार उस रिबन को चूम लिया था, जो उस तोहफ़े पर बंधा था, जो सालों पहले कभी शार्लोट ने उसे भेजा था। उसने सोचा, शार्लोट की अंगुलियों ने कभी तो उस रिबन को छुआ होगा। फिर रोलां बार्थ कहता है "द वर्ल्ड इज़ सेंसुअसली इरेज़्ड, कैन्सल्ड आउट, माय गेज़ पासेस थ्रू थिंग्ज़ विदाउट एक्नॉलेजिंग देअर सेडक्शन, आई एम डेड टु ऑल एक्सेप्ट यू।"
उसने पूछा, "इसका क्या मतलब है?" मैंने कहा, "इसका मतलब यह है कि दुनिया उन चीज़ों से भरी हुई है, जिन्हें तुमने देखा है, तुमने छुआ है, लेकिन जो मेरी दुनिया का हिस्सा नहीं। कि दुनिया तुम्हारी अनुपस्थितियों, तुम्हारे स्पर्श की अदृश्यताओं और तुम्हारी असंभवताओं से भरी हुई है। कि दुनिया कहीं नहीं है, सिवाय तुम्हारे ना होने की अनुभूति में।"
वो मुस्करा दी! वो मुस्कराहटों की वर्णमाला में ही बात करती थी। शब्द उसे हमेशा नाकाफ़ी जान पड़ते। मैंने उससे कहा, "इन तस्वीरों के लिए शुक्रिया। इन तस्वीरों में नहीं है, लेकिन मैं देख सकता हूँ वो सीढ़ियाँ, जिनसे होकर तुम गुज़रती हो, वे चाबियाँ, जिनसे तुम अपने दरवाज़ों को खोलती हो, वे दीवारें, जिन पर गिरती है तुम्हारी छाँह, वह की-बोर्ड, जिससे तुम मुझे लिखती हो मैसेज, वे खिड़कियाँ, जहाँ परदे लहराते हैं, जिनके बाहर मटमैली सांझ में एक अन्यमनस्क-सा सूरज डूबता है, जहाँ लैम्पपोस्ट की तरह खड़ी तुम कुछ सोचती रहती हो, कुछ सोचकर मुस्करा देती हो और फिर कुछ नहीं सोचने लगती हो।"
और तब, उसने मुस्कराकर कहा, "अब मैं तुम्हें अपने कमरे, अपने दफ़्तर की तस्वीरें नहीं भेजूँगी। मैं तुम्हें भेजूँगी एक 'सेल्फ़ी'। मैं भी अनुपस्थित हूँ वहाँ, मेरी अनुपस्थितियों के अन्वेषी, देखती हूँ तुम मुझे मेरे होने के नहीं होने में खोज पाते हो या नहीं।"

दिल्ली मेट्रो वाली लड़की

दिल्ली मेट्रो के एक सौ छप्पन स्टेशनों में से
किन दो बिंदुओं के बीच दौड़ती होगी तुम्हारी रेलगाड़ी
किन रेखाओं को काटते जोड़ते किन त्रिज्याओं को
किस धूप किस अँधेरे के व्यूह से जुड़ते-मुड़ते।

धौलाकुंआ या वैशाली?
साकेत या करोल बाग़?
मंडी हाउस या प्रगति मैदान?

या फिर 'हौज़ख़ास',
जहाँ प्रेमियों के जोड़े हाथों में लिए हाथ
और तुगलक़ के मक़बरे के गोल गुम्बद,
जिन पर इतनी काई और कालिमा!

नख पर ग्रे मैटेलिक नेलपेंट की अनुभूति सरीखे
ठण्डे धात्विक उजाले से भरे पैसेज, कॉरिडोर, सीटों पर
कभी खड़ी कभी बैठीं तुम क्या करती होंगी
सोचती होंगी क्या कुछ?

बड़ी सुबह जाती हो जब भोर की धूप भी नर्म, उनींदी, उन्मन
बालों में नहान का शीत लिए देह में पीयर्स साबुन की गंध
टिफ़िन जिसमें कलेवा पर्स जिसमें आईना और लिपग्लॉस
शाम लौट आती हो उसी रास्ते से जैसे लौट आते हैं पाखी
संतोष की भाषा में रचे एक वाक्य सी सुगठित
सुंदर, सहज, अनमनी।

खिड़की से बाहर देखती एकटक आँखों में
ग्रीष्म के नभ-सी रिक्ति लिए।

अक्सर सोचता हूँ मैं क्या सोचती होंगी तुम
दिल्ली मेट्रो के एक सौ छप्पन स्टेशनों में से
तुम्हारे गंतव्य और प्रस्थान के उन दो बिन्दुओं के बीच

चलते और लौटते-लौटते और चलते
हर दिन हफ़्ते के दिन पाँच।

तुमसे कभी माँगूंगा कोई गिफ़्ट तो यही कि-
बैठना है तुम्हारे पास उसी मेट्रो में जिससे लौटती हो घर
सुनना है तुम्हारी साँसें देखना है वह सब जिसे नहीं देखतीं देखकर भी
और तुम्हारे 'क्लचर' से खेलना है जब संझा की प्रभामयी दीप्ति में
लहराएँ तुम्हारे निर्बन्ध बाल।

चिड़ियों के लिए पानी

वो चिड़ियों के लिए पानी रखती थी
थोड़ा अहाते में थोड़ा अटारी पर
और थोड़ा सा आँख में अपनी।

चैत्र लगते ही यह उपक्रम!
निदाघ का दाह-दहन
भले दूर हो अभी
किन्तु जब दिवस तपने लगता
सूरज के एक बांस चढ़ते ही
अलगनी पर फट्ट से सूखने लगते अंगोछे
और तृषा से विकल मूर्च्छित हो
गिरने लगते पाखी
जैसे गाछ से गिरता हो पका फल
वो उठती और जलपात्र में
ढुरका देती शीतल नीर।

प्राण बसता है जहाँ कंठ में बसती है तृप्ति
पुण्य बसता है बसती है प्रीति
वो बूझती थी यह रहस्य
चिड़ियों जैसा मन था उसका चिड़ियों सी ही निकलंक
दोपहर के दुर्दैव में जल का शीत थी वह
जिसमें रात्रि के तिमिर की गंध
मिट्टी के अंत:स्तल का गुह्य रूप
और तोष का आशीष।

चिड़ियों के लिए वो रखती थी पानी
थोड़ा बरगद के कोटर में थोड़ा दुछत्ती की छत पर
और थोड़ा सा आँख में अपनी।

लालबत्ती से एक ‘ब्लश वाली स्माइल’

मैं लालबत्ती पर खड़ा था
एप्रिल की उस सुबह जब तुम्हारा मैसेज आया था
और मैं चौंक गया था एकबारगी यह पढ़कर कि
"चिड़ियों के लिए पानी रखना भूल गई हूँ,
प्लीज़ तू रख देना!"

और फिर, फ़ौरन बाद उसके, एक हड़बड़ी भरा मैसेज:
"ऊप्स, सॉरी, सॉरी, वो आपके लिए नहीं था।
ओह, दिस इज़ सोऽऽऽऽऽ एम्बैरेसिंग!"

जिस पर मैंने कहा था,
"रिलैक्स, कुछ भी नहीं हुआ है।
उल्टे, काश कि मुझे ऐसे भूल से कोई
"हॉट मैसेज" मिलता",
जिस पर मुस्कराकर तुमने कहा था,
"ना वह तो भूल से भी नहीं,
किसी को भी नहीं।"

लालबत्ती में महज़ सत्रह सेकंड बचे थे
जब मैंने तुम्हें कहा था,
"पता है, आज मैं एक कविता लिखूँगा,
जिसमें एक लड़की कांसे की कलसी में
चिड़ियों के लिए पानी रखना
ना भूलेगी",
तिस पर तुमने कहा था,
"ओ हाऊ स्वीट!"

मैं उस दिन भी लालबत्ती पर था
जब मई की उस सुबह
मेरे ‘गुड मॉर्निंग’ मैसेज के जवाब में

देरी से तुम्हारा जवाब आया था,
"आएम स्टिल इन मेट्रो,
और यहाँ बैठने की भी जगह नहीं है!"
और मैंने पूछा था, "कौन-सा स्टेशन गुज़रा है",
जिस पर तुमने कहा, "हौज़ख़ास",
और तब मेरे ज़ेहन में तैर गए थे
तुग़लक़ के मक़बरे के गोल गुम्बद,
जिन पर इतनी काई और कालिमा!

लालबत्ती में महज़ ग्यारह सेकंड बचे थे
जब मैंने तुम्हें कहा था, "आज मेरी कविता में
एक लड़की मेट्रो में ऐहतियात से बैठी होगी और
उसके नाख़ूनों पर तैर रही होगी वह
ख़ास क़िस्म की शीतलता,
जहाँ पर अभी वह
ग्रे मैटेलिक नेलपेंट",
तिस पर तुमने कहा था,
"ओहो।"

बाद उसके, जितनी बार मैं लालबत्ती पर रुका
एक मुस्कराहट की तितली तुम्हें भेजी
जिस पर तुमने पूछा, "क्या हुआ"
तो मैंने कहा, "कुछ नहीं,
लेकिन अभी लालबत्ती पर हूँ ना!"

और हरी बत्तियाँ मुझे मुँह चिढ़ाने लगीं
आँखों में खटकने लगीं पीली बत्तियाँ।

जब भी किसी तीनबत्ती से गुज़रता,
यही उम्मीद करता कि एक लालबत्ती मुझे रोके
और उसकी रेतघड़ी में कम से कम
डेढ़ मिनटों का वक़्फ़ा हो, मेरे मैसेज के जवाब में
तुम्हारी 'स्माइली' मिलने की मोहलत तलक।

फिर बीत गई गर्मियाँ और
चिड़ियाँ अब प्यास से तरसती
ना थीं।

फिर 'कॉन्शियस' हो गई तुम भी

और मुझे भूले से नहीं मिला फिर कोई
'मिसप्लेस्ड मैसेज'।

और कमबख़्त अलार्म घड़ियाँ भी वक़्त पर बजने लगीं
और तुम बिलकुल ठीक वक़्त पर पहुँचती रहीं
सफ़दरगंज वाले दफ़्तर, हौज़ख़ास पर
बेवक़्त होने के बजाय।

जबकि मुझे यहाँ रास्तों में
जब जब लालबत्ती मिली है
मैंने चेक किया है तुम्हारा मैसेंजर
'एक्टिव टू मिनट्स एगो' देखकर मुस्कराया हूँ
लेकिन मन मारकर जज़्ब कर ली है
अपनी मुस्कराहट की च्युइंगगम।

कितना अरसा हुआ
तुम्हें लालबत्ती से मैंने
एक 'ब्लश वाली स्माइल' नहीं भेजी
तुम्हें भी भूले से कभी उसकी याद
आती तो होगी ना, प्रिंसेस!

एकबारगी तो भूल ही गया तुम्हारी आँखों का रंग क्या है

तुम्हारे रोज़मर्रा को मैंने अपने ज़ेहन में जस का तस कुछ यूँ उलीच लिया था कि जैसे वो तुम्हारे नहीं मेरे ही सांझ-सकारे हों। मुझे ठीक ठीक मालूम रहता था कि तुम सुबह कब जागती थीं, कब शॉवर लेती थीं, कब मेट्रो में होती थीं, कब सोने जाती थीं, क्योंकि बहुधा मैं ही तो तुम्हें रात का चुंबन देकर नींद के निवीड़ अकेलेपन के लिए विदा कहता था।

फिर उस दिन तुमने कहा कि आज हम बात ना कर सकेंगे, आज मैं बाहर जा रही हूँ, दिल्ली से दूर और मुझे लगा जैसे तुम्हारे होने का नक़्शा मेरी आँखों से ओझल होने लगा हो।

उस दिन तुम उन जगहों पर नहीं थीं, जिन जगहों पर रोज़ हुआ करती थीं और इससे मेरी कल्पनाओं का क्षितिज झुटपुटों से भर गया। मुझे लगा आज उन जगहों पर हवा का एक बेनाम बगूला भर रह गया है, क्योंकि तुम वहाँ नहीं हो और अब उनके कोई मायने नहीं रह गए हैं।

दोपहर के वक़्त जब घास पर नंगे पैर चलते हुए मैं तुमसे बातें करता था, वह वक़्त उस दिन जैसे एक खुले हुए घाव जैसा था, जिस पर कोई गुलाब का फूल मैं नहीं रख सकता था। मैं चुपचाप घास पर अकेला चलता रहा और मेरे तलुओं पर घास की नोंकें चुभती रहीं, लेकिन तुम्हारी आवाज़ का लहज़ा मेरी पहुँच से इतना दूर था कि मैं जैसे तुम्हारी चुप्पियों की मीनार बन गया था गूँज से भरपूर, इतना कि अगर तुम मेरे क़रीब होतीं तो कान लगाकर सुन सकती थीं।

मैं रोज़ तुमसे पूछता था कि आज क्या पहना है तुमने और तुम रोज़ ब्यौरेवार मुझे बताती थीं अपनी टी-शर्ट, शर्ट, जीन्स, स्कर्ट, शॉर्ट्स, पलाज़्ज़ो, क्रॉप टॉप, कैफ़्टन टॉप, कट स्लीव्ज़, अफ़्गानी के बारे में, और मैं तसव्वुर में एक ठीक-ठीक तस्वीर बना लेता था तुम्हारी। लेकिन उस दिन, मेरे तसव्वुर से इतनी दूर थे तुम्हारे बदन पर उभरे हुए रंग और लिबास कि एकबारगी तो जैसे मैं भूल ही गया कि तुम्हारी आँखों का रंग क्या है और इस एक बात ने मुझे सबसे ज़्यादह बेचैन किया।

फिर जैसे कोई करिश्मा हुआ हो, मुझे नज़र आई, तुम्हारी उस सैर की ताज़ातरीन तस्वीरें। कोई जो तुम्हारे साथ शरीक़े-सफ़र थी, उसने एक बेतक़ल्लुफ़ लमहे में इंस्टाग्राम पर पोस्ट कर दी थीं चंद क्लिक्स, और मैं भूखी आँखों के साथ उनमें तुम्हें खोजने लगा। पहली तस्वीर में तुम नहीं थीं, दूसरी में भी नहीं, तीसरी में भी नहीं, या शायद, मैं ग़लत था। मैं लौटकर तीसरी तस्वीर के पास आया और उसमें दर्ज तमाम चेहरों का फिर से मुआयना करने लगा। और अबकी मैंने देखा

कि तुम वहाँ पर थीं, दो चेहरों के बीच, अपनी तीखी नाक और पारदर्शी मुस्कराहट लिए, अलबत्ता तुम्हारे टॉप की ठीक-ठीक रंगत अब भी मेरे बयान के बाहर ही थी।

मैं देर तक तुम्हारी उस तस्वीर को देखता रहा, दो धुंधले-से धब्बों की तरह तुम्हारी आँखें वहाँ टिमटिमा रही थीं। और तब मैं आख़िरकार मुस्करा दिया। तुम उन जगहों के दायरे से बाहर थीं, जहाँ रोज़ होती हो, लेकिन वह तुम ही थीं। तुम्हारी आवाज़ का शुक्र तारा किसी दूसरे ही सौर मंडल में दिपदिपा रहा था, लेकिन वो तुम्हारे ही होंठ थे। तुम्हारे ही कपोल, तुम्हारी ही भवें। स्लीवलेस में उघड़ी हुई गोरी गुदाज़ बाँहें भी तुम्हारी ही।

ये तो इसके बहुत बाद में हुआ, जब तुम दौड़कर मेरे पास आई, मुझसे लिपट गई, और चुंबनों से मेरा चेहरा भर दिया। और मैं तुम्हारे प्यार से मुतमईन मन ही मन मुस्कराता रहा। और कोमल स्पर्शों से संवारता रहा तुम्हारे बालों, गालों, पलकों और होंठों को। ये सब तो सचमुच बहुत-बहुत बाद में हुआ।

स्माइलीज़ से मिलता-जुलता है तुम्हारा चेहरा!

रेत और रेशम
से भरी तमाम रातों ने भी
इतने चंद्रमा नहीं जमा किये होंगे
जितनी तुम्हारी 'स्माइलीज़'
सहेज रखी हैं मैंने!

कि तुम्हारी मुस्कराहटों का
एक पूरा अलबम है मेरे पास

अब तो लगता है
बारिश के घर में रहती हो तुम
और मुस्कराहटें तुम्हारा
इंद्रधनुष हैं!

और
अति तो यह है कि
कि अब तो तुम्हारा चेहरा भी मुझे
'स्माइलीज़' से मिलता-जुलता
लगने लगा है!

‘एग्नेस’ : तीन स्केच

मैंने उससे कहा तुम ‘एग्नेस’ हो

‘एग्नेस’ अपनी कहानी से बाहर रहती है, मेरी कहानी में।
कहानी ‘एग्नेस’ का घर है जैसे कि मेरा।
एक दिन मैंने ‘एग्नेस’ की एक तस्वीर देखी। कोई पाँच साल पुरानी तस्वीर। अप्रैल का महीना था और वह ख़ुद अप्रैल का एक रक्तिम फूल नज़र आ रही थी। किशोरियों-सी देहयष्टि। गले में दुपट्टे का चंद्रमा। दोनों हाथ आगे की तरफ़ बंधे किंचित अचकचाहट के साथ लेकिन होंठों पर ऐसी निष्कवच मुस्कराहट मानो देह की अचकचाहट को उसकी भनक तक ना हो।
मैं देर तक उसे देखता रहा था।
फिर मैंने ‘एग्नेस’ से कहा, "वो लड़की आज भी तुम्हारे भीतर कहीं छुपी हुई है।" उसने कहा, "मैं ऐन वही लड़की तो हूँ।" मैंने कहा, "तुम ख़ुद को भला कहाँ देख पाती हो।" उसने मुस्कराते हुए कहा, "तुम भी मुझे कहाँ देख पाते हो?" मैं भी मुस्करा दिया।
हमारी मुस्कराहटों के छल्ले एक-दूसरे से टकराते रहे, हवा में हिलते हुए!
फिर उसने पूछा, "लेकिन तुम मुझे ‘एग्नेस’ क्यूँ कहते हो?" मैंने कहा, "तुम्हें पता है मिलान कुन्देरा का नॉवल ‘इम्मोर्टलिटी’ कैसे लिखा गया? कुन्देरा के पास कोई कहानी नहीं थी, कोई वाक़या नहीं, कोई ख़याल तक नहीं, बस एक ख़ाली दोपहर थी और एक मीठी उदासी की बैरंग चिट्ठी थी। एक सिड्यूसिव किस्म की मेलन्कली। उसने देखा कि एक लड़की दूर कहीं चली जा रही थी। फिर वह पलटी और मुस्कराकर उसने वेव किया। विदा के उस जेस्चर में कुछ ऐसा था कि कुन्देरा ने ख़ुद से कहा: "आह, मैं उसे एक नाम देना चाहता हूँ। ‘एग्नेस’। वह ‘एग्नेस’ है।" और चूंकि वह उसका नाम बार-बार पुकारना चाहता था इसलिए उसने उसकी कहानी सुनाने का निश्चय किया। इस तरह ‘इम्मोर्टलिटी’ लिखा गया।
मैंने ‘एग्नेस’ से कहा, "जब मैंने तुम्हारी वह अप्रैल वाली तस्वीर देखी, तुम्हारी किशोर देह के सुदूर छोर पर निष्कवच मुस्कराहट का वह लाल फूल, तो मैंने ख़ुद से कहा कि मैं तुम्हारा नाम लेकर पुकारना चाहूँगा। ‘एग्नेस’ कहकर। और चूंकि मैं तुम्हारा नाम बार-बार पुकारना चाहता था इसलिए मैंने भी एक कहानी रच दी, जिसमें तुम अपने भीतर कहीं छुप जाती हो, जबकि तुम हमेशा यही मानती थी कि तुम तो ऐन वही हो, जो कि हमेशा से थी।"
वह मुस्कराती रही। वही ‘एग्नेस’ वाली मुस्कराहट, विदा की वेविंग वाली। मैंने कहा, "कौन जाने तुम कौन हो, लेकिन मैं तुम्हें ‘एग्नेस’ कहकर पुकारना चाहता हूँ। मैं इस नाम के भीतर रहना चाहता हूँ, जैसे तुम अपनी कहानी में रहती हो।"

और तब उसने कहा: "सुनो, मुझे कई लोगों ने कई नामों से पुकारा है, लेकिन यह नाम सबसे ख़ूबसूरत है। 'एग्नेस': आह, यह जादुई है। मुझे फिर 'एग्नेस' कहकर पुकारो ना। प्लीज़, मुझे इस नाम से पुकारो ना!"

फ़्लोरल प्रिंट वाली स्कर्ट और बारिश की ईयररिंग्स

मैंने 'एग्नेस' से कहा: इस तस्वीर में तुम्हारे भूरे बालों की लहर के पीछे वह जो लाल सितारे की तरह तुम्हारी ईयररिंग टिमटिमा रही है, उसमें तुम्हारे उन मीठी उदासी की चाशनी में डूबे खोए-खोए-से एक्सप्रेशंस के लिए मैं कई पर्याय दे सकता हूँ।
उसने कहा, अच्छा? जैसे कि?
मैंने कहा, मसलन मैं कह सकता हूँ: कि यहाँ पर तुम 'पेन्सिव' हो, या 'रिफ़्लेक्टिव' हो, या 'मेडिटेटिव', या 'कॉन्टेम्प्लेटिव', या 'इंट्रोस्पेक्टिव', और हाँ, एक ख़ास नज़र से देखूँ तो कुछ-कुछ 'मेलन्कलिक' भी।
'एग्नेस' के चेहरे पर सांझ की नीली छाँह झुक आई।
जैसे रूठते हुए बोली: तुम्हें तो मैं ऐसी ही अच्छी लगती हूँ ना: 'पेन्सिव' और 'मेलन्कलिक' और 'मीठी उदासी' और जाने क्या-क्या!
मैंने कहा, नहीं ऐसा तो नहीं। मसलन, मुझे तुम्हारी वह वाली तस्वीर भी बहुत पसंद है, जिसमें तुमने वो फ़्लोरल प्रिंट वाला स्कर्ट पहना है और तुम उसमें वहाँ 'उस शहर' के 'उस शॉपिंग मॉल' में किसी छोटी लड़की की तरह खिलंदड़ नज़र आ रही हो, मुस्कराहटों के गुलदस्तों के बीच। सुनो, मुझे बेहद पसंद हैं फ़्लोरल प्रिंट के स्कर्ट: दूधिया फ़ैब्रिक पर गुलाबी छाप वाले।
अबकी 'एग्नेस' खिलखिलाकर हंस पड़ीं। फिर उसने कहा, हम्म्म्म, 'उस शहर' का 'वह शॉपिंग मॉल', जहाँ तुम भी तो कभी चहलक़दमी किया करते थे। हमारे एक-दूसरे को जानने से बहुत बहुत पहले। क्या बताया था तुमने, वह 'Shopper's Stop' वाले आउटलेट के पास जो बुक स्टोर है, वहाँ अक्सर टहलते रहते थे, है ना। मैंने कहा, हाँ, और यह भी कि तुमने कहा था 'Shopper's Stop' वाले जिस तरह से अपने टाइटिल को एब्रिविएट करके SS लिखते हैं, उससे मुझे तुम्हारे नाम के इनिशियल्स की याद आती है।
मैंने स्माइली की तितली बनाकर 'एग्नेस' को भेज दी। उसके पास पहुँचते ही वह उसके फ़ोन की स्क्रीन से बाहर निकली और उसके इर्द-गिर्द मंडराने लगी, मानो वह लड़की नहीं, अमलतास का पीला फूल हो गीले रंगों वाला, जिसके कानों में बारिश की ईयररिंग्स।
फिर मैंने कहा, तुम्हें पता है मैं अक्सर सोचता हूँ कि 'उस शहर' के 'उस शॉपिंग मॉल' में जहाँ मैं 'उन दिनों' टहलता रहता था, कौन जाने तब तुम भी वहीं अपना वह फ़्लोरल स्कर्ट पहने घूमती रहती होगी। कौन जाने, हम एक-दूसरे से रास्ते में कहीं टकराए होंगे। कौन जाने, हमने एक-दूसरे को ग़ैरमौजूद नज़रों से देखा होगा, जैसे भाप का एक पारदर्शी-सा बगूला, कौन जाने हम एक-दूसरे को देखकर भूल गए होंगे। क्या पता था, किसी 'दूसरे शहर' से, किन्हीं 'दूसरी

जगहों' से हम एक-दूसरे से बात करेंगे, पहचान की पीली रोशनी में भींजते हुए।
एग्नेस' कुछ सोचती-सी मुस्कराती रही।
मैंने कहा, पता है, 'द सर्च वॉरंट' में वह नैरेटर भी यही सोचा करता था डोरा के बारे में। वह पेरिस के किसी पब में जाता, पेवमेंट्स पर चहलक़दमी करता और रेस्तरां में रेड वाइन पीता तो यही सोचता कि क्या आधी सदी पहले डोरा भी इन्हीं जगहों से होकर गुज़री थी। कहीं मैं ऐन उसी जगह पर तो नहीं बैठा हूँ, जहाँ कभी वह बैठी थी। क्या मैं उसकी ग़ैरमौजूदगी के दायरे में हूँ। क्या मेरे होने की केवल एक ही शर्त है: कि वह ना हो।
अब 'एग्नेस' ने कहा, ओफ़्फ़ो, वह 'डोरा' थी, मैं 'एग्नेस' हूँ। डोरा खो गई थी। और मैं केवल छुपी हुई हूँ। अभी ठीक? नाऊ, जस्ट स्माइल, वही छल्लों वाली मुस्कराहट। और हाँ, वो फ़्लोरल प्रिंट वाली स्कर्ट मेरी भी सबसे फ़ेवरेट है। उसे पहनकर मुझे लगता है, मैंने चाँदनी पहनी है।
और देह पर चाँदनी पहनने से ज़्यादा ख़ूबसूरत कुछ नहीं, बारिश की ईयररिंग्स भी नहीं!

समुद्र की खिड़की में 'एग्नेस'

'एग्नेस' गीले स्याह पत्थरों पर बैठी थी, हान्स क्रिश्तियान की 'मर्मेड' की तरह। बदन चुराए। समुद्र की खिड़की में झाँकती हुई। उसके स्कर्ट के छोर पर कनेर के फूल खिले थे।
मैंने उससे कहा, "तुम्हें पता है तुम भी एक समुद्र हो और तुम्हारे स्कर्ट का घेर तुम्हारे समुद्र का किनारा।" वह मुस्कराते हुए बोली: "मुझे मालूम था मेरी वह तस्वीर देखकर तुम ऐसा ही कुछ कहोगे।" मैं भी मुस्करा दिया।
मैंने कहा, "जबकि कितना अचरज कि मैं उस तस्वीर में देख तक नहीं सकता कि तुमने काजल लगाया है या नहीं। बस तुम्हारे बालों की एक लहर बाएँ कंधे पर गिरती है। और नाख़ूनों पर गाढ़ा नेल पेंट, अपनी गंध से मतवाला करता हुआ और स्कर्ट के फ़्रिन्ज़ पर उगे कनेर, जो कि नमकीन पानी में भींज चुके थे।"
'एग्नेस' ने कहा, "कितना अरसा हुआ। पता नहीं उस दिन मैं क्या सोच रही थी। जाने वो दिन कहाँ रखा होगा, मेरी याद के तहख़ाने में।" मैंने कहा, "और यह भी कि उस दिन वाली 'एग्नेस' आज तुम्हारे भीतर कितनी बची होगी।"
अबकी उसने कहा, "ओफ़्फ़ो, तुम और तुम्हारा कुन्देरा।" मैंने कहा, "कुन्देरा ही नहीं, मोद्यानो भी।" उसने कहा, "वो कैसे?"
मैंने कहा, "मोद्यानो का एक नॉवल है। 'द सर्च वॉरंट'। होता यह है कि 1941 में पेरिस पर नात्सी ऑक्यूपेशन के दौरान एक लड़की अपने होस्टल से भाग जाती है और अख़बारों में उसकी गुमशुदगी के इश्तिहार छपते हैं। पूरी आधी सदी बाद नॉवल का नैरेटर उस तस्वीर को किसी आर्काइव में देखता है और उसे खोजने निकल पड़ता है। एक ऐसी लड़की की तलाश, जो अरसा पहले कहीं खो चुकी थी!" 'एग्नेस' पूछती है, "फिर क्या होता है?" मैं कहता हूँ, "होना क्या है, उसे वह नहीं मिलना होती है सो नहीं मिलती है। लेकिन उसकी तलाश करते वह यह ज़रूर जान जाता है कि उसकी तलाश उसके भीतर कहीं सोई हुई थी। अब जैसे वह सहसा चौंककर जागा हो और उसे खो चुकने की उदासी से भर गया हो: पूरी अधसदी बाद!"
'एग्नेस' कुछ देर सोचती है, फिर कहती है: "क्या नाम था उस लड़की का।" मैं कहता हूँ: "डोरा

ब्रूडर।" फिर उससे कहता हूँ: "सुनो, जब तुम अप्रैल का रक्तिम फूल होती हो तो तुम ‘एग्नेस’ होती हो। और जब तुम समुद्र की खिड़की में झाँकती हो, तब तुम ‘डोरा ब्रूडर’ हो जाती हो। और मैं कभी कुन्देरा, कभी मोद्यानो की तरह तुम्हें खोजता रहता हूँ।"
‘एग्नेस’ खिलखिलाकर हंस देती है। उसकी हंसी के प्रतिबिम्ब समुद्र के शीशों पर दूर तलक झिलमिलाते हैं। मैं उस पारदर्शी हंसी को अलबम में आलपिनों से टांक देता हूँ: ऐहतियात के अपने रियाज़ के साथ। वह खिड़की से उठती है और लहरों पर चलते हुए कहीं खो जाती है।
बस उसके स्कर्ट पर खिले कनेर ही गीले स्याह पत्थरों पर शेष रह जाते हैं।

ये मेहकती हुई ग़ज़ल मख़्दूम

ठीक तुम्हारी 'चुनरी' के रंग वाला
पीला फूल जब मैंने तुम्हारे बालों में
टांका था तो तुम्हारे गजरे की सफ़ेद रात
मचल उट्ठी थी!

और महक केवल
मोगरों में ही नहीं थी
मन भी महका था तुम्हारा
जैसे छींक भर भी छींटा हो मेंह का तो
बेतरह महक उठती है मिट्टी!

तुम्हारी आँखों के गीले पतझर में
गुम गए थे सुबह के दोनों किनारे
लेकिन मेरे होंठों से पलक भर भी
डिगी नहीं थीं तुम्हारी नज़र!

लालसा की एक लपट की तरह
बना रहा था मैं तुम्हारे भीतर
जब तक कि रोशनी के सिरे राख होकर
झर न गए!

मोमजामे में लिपटा था तुम्हारा दिल
सो गलता रहा क़तरा-क़तरा
प्यार की आँच में
फूलों की लहर पर ठहरा रहा
पूरे का पूरा फ़लक!

मानो परवाज़ से भी हल्के हों अरमान
और उफ़क़ के छोर मुलायमियत में गल गए हों
दूध में मखाने की तरह!

अत्तार के पसारे जैसा था

वो फूलों की काट वाला आसमान–
कितने इत्र, कितनी रंगतें,
कितना केसर, कितनी कस्तूरी!

चाँदनी में संवलाई देह थी तुम्हारी–
मेरे प्यार की छाँह में घड़ी भर सुस्ताकर
और शिथिल हो गई!

काँपते रहे तुम्हारी कत्थई होंठ,
काँपती रही प्रत्यंचा,
तीर छूटने के
तीन पहर
बाद भी!

और तब, मेरे कानों में
एक मद्धम सी जुम्बिश से कहा था तुमने:
"फूल के हार फूल के गजरे/
शाम फूलों की रात फूलों की/
आपका साथ साथ फूलों का/
आपकी बात बात फूलों की!"

फूलों का वो नग़मा
तामीर हुआ था इसी तरह
जिसे गुनगुनाते रहे थे
फिर हम मिलकर
मुद्दतों ख़ुशबू तलक!

घाव रूह के फूल हैं

और फिर, बहुत दिन बीत गए।

इतने के ज़्यों
सफ़ेद रौशनी की परतें पड़ती जाएँ
सफ़ेद रौशनी की परतों पर
सफ़ेद रौशनी की परतों के
पसेमंज़र

कि चाहें तो तह करके सुई से भेद दें उन्हें
परत-दर-परत।

और तब, एक सुबह तुमने कहा
कि वक़्त मरहम है!

कि वक़्त भर देता है तमाम घावों को
और मैंने कहा के कहीं घावों का भर जाना भी
एक मर्ज़ तो नहीं?

और मैंने ज़िद से इसरार करते कहा कि
माना कि वक़्त मरहम है
लेकिन मरहम भी तो
एक मर्ज़ है।

कि घाव फूलों की तरह होते हैं
सूख जाएँ तो मर जाते हैं।

मरे हुए फूल
और सूखे हुए घाव
दोनों तौहीन हैं रुसवाई हैं
अपने भीतर दौड़ते लहू की
लाल आब के ताब की।

कि कहीं चंद घावों को सींचना ही तो

बेहतर नहीं?

कि कई किस्तों और करवटों में डूबी हों चाहें
तमाम दास्तानों के पहले सवेरे होते हैं
पहले आँसू, पहली धड़कनें,
पहले ख्वाब होते हैं।

हर पहला अपने कई पहलों की परतों तले
दबा होता है, पहलू दर पहलू,
मगर तब भी होता है
आँच का एक सिरा
जैसे शोला।

फूंको और जिलाओ शोले!
कुरेदो और जिलाओ घाव!!

घाव रूह के फूल हैं!

जो रूह बेदाग़ होती है,
वो बेजान होती है,
जिस्म की तरह।

औ ज़िन्द न हो तो
बुत बेजान भी
क्या करे!

ये तक़रीर जो तुम्हारी नज़रों से वाबस्ता है

वक़्त:
ग़ैरमुमकिन था:
तक़रीबन ग़ैरमुनासिब होने कि:
हद तक।

हमारे पास वक़्त जैसे था ही नहीं
वह बीत रहा था!
या शायद जो कुछ बीत रहा था
वही वक़्त था।

और हम,
वक़्त के बीतने का एक इश्तेहार थे।

जब हम मिले तो सबसे पहले यही जाना
कि वक़्त नहीं है अब।

या शायद, हम वक़्त के बाहर मिले थे।

वैसे भी वक़्त ख़ुद वक़्त की तरह
कहाँ होता है।

तमाम पहचानों और सिलसिलों
ज़मानों और इलाक़ों के बाहर
अगर रख दें उसे तो वो मेज़ पर मौजूद
किसी पेपरवट की तरह ही होगा
क़यामत तलक मुंतज़िर।

एक ठंडी और ठोस मुद्दत।

लेकिन ज़िन्द के भीतर उसे टटोलें
तो वही वक़्त एक 'उम्र' बन जाता है

रेत और रेशम से भरा
रातों और रोशनियों का
एक इंतेहा तवील वक़्फ़ा।

ज़िन्दगी वह है,
जो वक़्त के लंबे ठिठके हुए अंतराल के दौरान
खंख होती है।

हम मरते नहीं, केवल बीत जाते हैं।

वक़्त हमसे होकर गुज़र जाता है।

हम वक़्त के गुज़रने की सुरंग हैं:
दो रातों के बीच एक गलियारा।

मुझे नहीं चाहिए यह दलदल में धंसता हुआ जहाज़।
वक़्त के बाहर कहीं मिलो मुझसे।

जैसे मिली थीं पहली दफ़े
चाहे कितनी ही इंतेहाओं का
'पहला' रहा हो वो आग़ाज़।

ये तक़रीर,
जो अभी तुम्हारी नज़रों से वाबस्ता है,
एक ग़ुबार का बगूला है
वक़्त मिटा रहा है इसके एक-एक हर्फ़ को
उनके लिखे जाने के ही दौरान।

कि ये ख़ुद को रद्द करने की एक तरक़ीब है।

इस तक़रीर के बाहर मिलो मुझसे।

‘सराफा लड़की स्कूल’ की छात्राएँ

‘चिटनीस के बाड़े’ में पढ़ीं
‘पानदरीबा’ मिडिल स्कूल में बढ़ी थीं
पुराने शहर की लगभग सभी लड़कियाँ
आठवीं के बाद आधी चली गईं ‘विजयाराजे’
आधी ‘सराफा’ हायर सेकंडरी स्कूल।

‘सराफे’ से ही लगा था मेरा भी स्कूल
‘शाउमावि महाराजवाड़ा क्रमांक तीन’
स्कूल के परिसर में जहाँ
पन्द्रह अगस्त छब्बीस जनवरी को
फहराया जाता था झंडा और बुधवार को
बिलानागा होती थीं एनसीसी की क़वायदें
वहीं से बहुधा दिख जाती थीं
सराफा स्कूल की खिड़कियों में छात्राएँ।

चिड़ियों की तरह चहचहातीं
नीली कुर्ती सफ़ेद सलवार पहने
कंधे पर ऐहतियात के साथ
आलपिन से पिरोए दुपट्टा
कोई उन्हेल से आई कोई चिमनगंज मंडी से
कोई माली की बिटिया कोई अर्दली की
किन्तु सभी के सभी नियमपूर्वक
नाम के आगे जोड़तीं ‘कुमारी’।
सुबह की पाली वाली छात्राएँ
घर जाकर माँजती होंगी बर्तन
दोपहर की पाली वाली
घर जाकर पकाती होंगी साग
साइकिल की घंटियाँ बजाकर
लौटतीं संझा के आलोक में।

प्रावीण्य सूची में प्रवीण

वाद-विवाद स्पर्धाओं में अव्वल
इसका तो मैं भी साक्षी जब
'दौलतगंज' में देखा था
अपने स्कूल की टीम को/लड़कियों से हारते।

ग्यारहवीं का छात्र था किन्तु
'सराफा' लड़की स्कूल के सामने से
जब भी गुज़रता झुका लेता आँखें
मानो मेरा नाम लेकर ही अभी
पुकार बैठेगी कोई नौवीं की छात्रा
फिर ठठाकर हंस पड़ेगी सहपाठिनी के
हाथ पर देकर ताली।

'मोतीबाग' वाली सीढ़ियों पर
मिल जातीं झुंड में तो झेंप जाता
तब भी मन में कौतुक या
विस्मय के एक वृत्त में
लहलहाती रहती उनकी हंसी।

सत्रह की वय के बावजूद निकलंक था चित्त
मन में दोष का लेश नहीं बीती शताब्दी के
अंतिम दशक के वे अनभिज्ञ सांझ-सकारे।

आयु में तब से अठारह शिशिर
और जुड़ गए देह में कब की
जगी माया लगी छाया
प्रणय-कलह के अनगिन
खटरागों में मरीचिका के
मृग की भांति भटका रहा
मन उन्मन किन्तु कभी नहीं भूली
'सराफा' लड़की स्कूल की छात्राएँ।

इंदौर में रहता हूँ
उज्जैन लौटना होता नहीं किन्तु
कभी लौटा अपने नगर ख़ूब विश्रांति
और अवकाश के साथ तो
'हरसिद्धि पाल' चढ़ूँगा लांघूंगा 'रुद्रसागर'
महाकाल वन में जाकर निहारूँगा
सन् उन्नीस सौ इकतालीस में

शिंदे मराठाओं द्वारा बनवाई वह इमारत
जहाँ मेरे स्कूल की दीवार से जुड़ा
लगता था 'सराफा' लड़की स्कूल।

‘वह’ लड़की : जिसने कहा था मुस्कराकर दिखाओ ना!

‘कच्ची पहली’ से नहीं आई थी ‘वो’ हमारी क्लास में
दूसरी से नहीं पाँचवीं से भी नहीं

चौथी में थे हम जब ‘टेकचंद’ ने छोड़ दिया स्कूल!
‘उसको ’नहीं पता कैसे गिलहरी कुचल गई थी
‘टेकचंद’ के पैरों तले वार्षिकोत्सव वाली दौड़ के दौरान
सब बस्ता लाते एल्युमीनियम की पेटी लेकर
आता था ‘पेशवानी’ ये ‘उसने’ कहाँ देखा
‘कसेरा’ के पिता हलवाई थे वो टिफ़िन में लाता था रबड़ी
‘हिम्मत’ ‘किम्मत’ ‘सिम्मत’ तीन भाई थे सिख मोहल्ले से आते थे
तीसरी में थे जब सुशोभित ने भाग लिया था नाच के एक कार्यक्रम में
ये सब ‘उसको’ कैसे पता चलता?

‘कच्ची पहली’ से नहीं थी वो हमारी क्लास में
दूसरी से नहीं पाँचवीं से भी नहीं छठी में थे हम
तब आई थी ‘मराठी मंदिर विद्याशाला’ से

कैसा कौतुक!
क्लास में एक नई लड़की-
जो नहीं जानती कौन था ‘टेकचंद’ कौन ‘पेशवानी’
खाने से पहले गाना है ‘सहना भवतु’ उठने-बैठने पर
‘उत्तिष्ठ’ और ‘उपविश’ यह तक नहीं मालूम
बड़ा बरामदा कहाँ लघुशंका के लिए किधर सबसे अनजान
सहमी सी रहती थी कोमल इतनी कि धूप लगे झुलसती
पानी पीने भी नहीं जाती पूनम को साथ लिए बिना!

मैं छठी पंक्ति में बैठता था ‘वो’ पहली में
नए सत्र के पहले दिन ‘आचार्य जी’ ने कहा
सुशोभित, तुम ‘प्रथम’ आए हो सबसे आगे जाकर बैठो
मैं झेंपते हुए उठा ‘उसके’ बस्ते से बस्ता सटाकर

जा बैठा इतने समीप कि चाहूँ तो आँख उठाकर
देख सकता था 'उसकी' आँखों के कत्थई भंवर

और तब एक दिन जाने क्या सूझी 'उसे' जाने किसने क्या बताया
कि आकर बोली- सुशोभित, एक बार मुस्कराकर दिखाओ ना
सुना है गाल में तुम्हारे पड़ते हैं गड्डे!

आठवीं की परीक्षा देकर लौटे हम सन् चौरानवे में
फिर नहीं गए लौटकर 'रामबाड़ा' जहाँ दस साल से जा रहे थे बिलानागा
क्या जाने कौन किधर गया बाद में बस मिलती रहीं ख़बरें
धर्मपाल बन गया चिकित्सक जितेन ट्रक चलाने लगा
दो साल में ही ब्याह हो गया उषा का मंजू बन गई टीचर
नहीं मिला तो नहीं मिला 'उसी' का कोई कुशल-समाचार!

और फिर एक दिन दिखी 'वह' पूरे के पूरे पंद्रह पतझड़ बाद
दो हज़ार नौ की उस अन्यमनस्क सुबह इंदौर जाते पहर
बस में सबसे आगे खड़ी थी कानों में ठूँसे ईयरफ़ोन
बहुत पीछे बैठा था मैं और कोई करिश्मा इस बार मुझे
नहीं ले जा सकता था उसके समीप कि बैठ सकें घुटने जोड़े!

मुस्कराकर 'वेव' किया मैंने 'उसने' पहचाना नहीं
'अरबिंदो कॉलेज' से पहले उतर गई मुझे जाना था 'गाड़ी अड्डा'
जैसे मिली थी वैसे ही खो गई इस बार तो जैसे
दूरस्थता के और गहन अभिप्राय लिए

कहीं मिले तो कहना
सुशोभित मुस्कराया नहीं फिर वैसे किसी और के लिए
जैसे मुस्कराया था उस दिन आईने के सामने अकेले
जब तुमने की थी उससे एक अदद मुस्कराहट की फ़रमाइश
कि सुशोभित की बीसियों मुस्कराहटें तुम पर उधार हैं
कहीं मिले तो बता देना 'उसको'!

‘क्लचर’ वाली लड़की

उस दूरस्थ दोपहर की बस इतनी ही स्मृति है मुझे
कि दौड़ती हुई आई थी वो बड़ी-सी लड़की
और उसका ‘क्लचर’ रह गया था मेरे हाथों में।

छब्बीस साल से कम पुरानी तो क्या होगी वह याद
रामबाड़े में लगता था स्कूल नदी का किनारा जिससे सौ फर्लांग दूर
अपराह्न तीन बजे बजती थी घंटी जब लाल ईंटों की क्यारियों में
गेंदे के फूलों की तरह पंक्तिबद्ध हम टिफ़िन से खाते थे कलेवा
लड़के अलग लड़कियाँ अलग भोले दिनों की वो बात।

अठारह लड़कियाँ होंगी चालीस की क्लास में कइयों के नाम आज भी याद
सदैव सहमी सी रहती थीं प्रणति जाने क्यूँ ख़ूब मुँहफट थी उषाकिरण
मंजूबाला को मालूम था कौन है क्लास में सबसे होनहार
लिहाज़ा मुझी से हमेशा लिया करती थी कॉपी और करती थी होमवर्क
चित्रांशी जो बहुधा कहती थी सुशोभित थोड़ा मुस्कराकर दिखाओ ना
हम भी तो देखें तुम्हारे गालों के गड्ढे तिस पर सुशोभित
झेंप जाया करते थे बेतरह कि कानों की लवें तक लाल।

और वह बड़ी-सी लड़की, स्कूल के रास्ते में पड़ता था
जिसका घर गली के मुहाने पर गणगौर दरवाज़े के सामने
जिसमें काष्ठ की खिड़कियाँ और अहाते में पीपल।

सन् इनक्यान्वे की फ़रवरी थी स्कूल में सालाना जलसा।
पहले दिन खेलकूद दूसरे दिन नाच तीसरे दिन सहभोज का आयोजन।
पहले दिन की ही दोपहर रही होगी जिसकी याद अब धुंधली
सिवाय इसके कि दौड़ती हुई आई थी वह लड़की।

उसके बालों की लहर अवश्य याद है जब विद्युल्लता-सी
गुज़री थी मेरे समीप से और मैं उसे रोकने को आगे बढ़ा था
तब मेरे हाथ में रह गया था उसका ‘क्लचर’ जिसे थामे हुए फिर
देर तक अचरज से देखता रहा था जैसे कोई तितली!

बस इतनी भर याद है उस दूरस्थ दोपहर की
और इतनी उत्तरजीविता है नौ वर्ष की वय के कौतूहल की
जो आज भी इतना ताज़ा-टटका होगा यह भान नहीं था मुझे
स्मृति के सिंहद्वार पर हतबुद्धि प्लावन में डिगे पाँव लिए खड़ा हूँ
हाथों में अब भी सहलाते उस लड़की का 'क्लचर'।

डूबते हैं स्पर्श के पत्थर

दरख़्तों पर लदा लस्त-पस्त आकाश
रोशनी की बर्छियों से बिंधा
दु:ख की देह पर घाव सुख का
मुँह खोलता-सा।
सुई की आँख से झाँकती हुई चाह!

अपने क़ाबू के बाहर होने की
ऐन सरहद पर ज़ब्त करते ख़ुद को
खिलखिलाहट के परदे के पीछे
त्वचा की एक नदी रुकती है
और डूबते हैं स्पर्श के पत्थर।

दीवार के उस तरफ़ जा गिरी आँखों को
खड़खड़ाहट के बीच सुनने की कोशिश करते हैं
कान चौंकन्ने और बू उठती है जल रही तस्वीरों से
सिल्वर ब्रोमाइड का एक रासायनिक भपका।

दिन के तपते हुए पहाड़ पर तुम
जलने से जबकि बचा रही होती हो अंगुलियाँ
देह पर उगे काँटों को सहलाते
चाक़ू पर चलने की चौकस सतर्कता के साथ
तमाम मसरूफ़ियतों के बावजूद
भूलती नहीं उस एक भंवर को
जो हर चीज़ के बीच से घर्राती हुई गुज़र जाती है
अंगुलियों के अंतराल में।

और एक चुहल की उड़ती हुई चिड़िया
एक ख़ास लहज़ेदार स्वर, हंसी, खिलखिलाहट
चेहरे पर चस्पा चेहरा उतारने की
रोज़मर्राई वर्जिश के दौरान
सहसा ढूँढ़ती हो एक चाबी गुमी हुई
जबकि सिर हिलाते सैकड़ों ताले

हँसते हैं हर तरफ़।

फिर भी सुख का घाव जब भी खोलता है मुँह
तुम चबा लेती हो अपने शब्द,
निगलती हो पत्थर।

तमाम कटे हुए पेड़ों को बजाती हो
वायलिन की तरह।

तुम्हारी आँखों की सुरंग में बंद होता समुद्र

बारिश और बसंत के बीच स्थगित
एक अधूरे चुंबन और अस्फुट कराह को
रेलवे प्लेटफ़ॉर्म की चिकनी सतह पर
भारी लगेज के नीचे कुचलाते सुनता हूँ
और देखता हूँ ख़ुद को
एक खुलते चौराहे पर हाथ हिलाते
हवा के पारदर्शी गुम्बद में

मैं तैरता हूँ सफेद झाग वाली धूप में
डूबती-उतराती इच्छाओं के शंख,
सीपियाँ और घोंघे बीनते
समुद्र को चीरते चाकू की चमक में दाख़िल होता हूँ
एक सुरंग के भीतर भूमिगत नदी और
जुगनुओं की भिनभिनाती छतरी के ऐन नीचे
अलविदा कहता हूँ तुम्हारी गंध तक को
एक पत्थर पर लिखता हूँ विदा

भूरी नदी की देह में गड़ते पानी और
पिछले पतझर के गीले पत्तों-सी
कच्ची ईंटों वाली गंध के बीच
सुनते हुए प्यार की अंतिम प्रत्याशा
मैं तहस-नहस करता हूँ
चंद्रमा की घंटियों की खनकती ध्वनि
नींद में देखता हूँ बिना तारों वाला एक तानपूरा
और तुम्हारी आँखों की सुरंग में
बंद होता एक पूरे का पूरा समुद्र
बारिश पर लिखता हूँ विदा

ओस के आईने में अलक्षित

पानी के तल से ताकते एकटक मुझे
तुम्हारे आँखों के धब्बे
मेरे भीतर बनाते कोई भंवर

और वह पानी भी कुछ नहीं
एक भोर है उदास
आकाश की रेत में बिछी हुई

अब जबकि मैं गड़बड़ा चुका हूँ
तमाम भंवरों को तमाम धब्बों से
पेड़ों की टहनियाँ निविड़ हैं
और यह-
इतनी धूसर भोर

मछली की आँख सरीखे डबडब
डूबते सूरज की धूल
एक नाम है तुम्हारा प्यार
जिसे लिखने से पहले ही मिटा चुका होता हूँ
रेत की अंतहीन नदी में

हर बार लौटता हूँ तुम्हें चाहते हुए
धनुष टूटता है मुझमें
तीर चूकता है अपना लक्ष्य
हर बार।

एक धुंधली सुबह है तुम्हारा नाम
आत्मा में गहरे धंसा कोई धूसर मोती
जबकि आँसू का कोई चेहरा नहीं
ना धुली हुई दूधिया हवा का।

तुम्हें चाहते हुए देखता हूँ ख़ुद को
ओस के आईने में अलक्षित।

रूठी हुई ‘लड़की’ अपनी ऐनक के पीछे रहती है

रूठी हुई ‘लड़की’"
मई का सफ़ेद बादल होती है।

रूठी हुई ‘लड़की’
अपनी अनुपस्थिति के शब्दकोश में रहती है
किसी अलभ्य शब्दार्थ की तरह।

वह अर्थों को बूझना नहीं चाहती
केवल लिपस्टिक से रेखांकित करती रहती है
अनुपस्थित शब्दों की वर्तनी
और शब्दकोश असंख्य सूर्यास्तों की
ललाई से भर जाता है।

रूठी हुई ‘लड़की’ की मुस्कराहट
महज़ गोलाइयों से भरी एक ग़ैरहाज़िरी होती है:
एक अधूरा चंद्रमा, दो सितारों के दायरे में
ठिठका हुआ।

रूठी हुई ‘लड़की’ अपनी ऐनक के पीछे रहती है।

रूठी हुई ‘लड़की’ कानों पर ईयरफ़ोन पहनती है।

वह एक अनुपस्थित बारिश में भींजते हुए एफ़एम सुनती है।
फिर ऊबकर चुनने लगती है अपने लिए नेलपॉलिश के रंग:
"मोरपंखिया चाँदनी, येस्स इट्स माय फ़ेवरेट!"

रूठी हुई ‘लड़की’
सूर्यास्त की खोह में चहलक़दमी करती है
साँझ के सुर्ख किनारे को वह तब तक निहारती है
जब तक वह स्लेटी नहीं हो जाता।

फिर वह आकाश से थोड़ा स्याह रंग लेकर
अपने गालों पर मल देती है
और सूरज की दियासलाई को
धीरे-धीरे बुझते देखती है:
खिन्न, क्षुब्ध, नाराज़।

फिर वह अपनी डायरी में दर्ज करती है:
"काश, कि यह दियासलाई दोनों छोर से जल रही होती
ताकि वह बुझ रही होती दोनों छोर से।"

फिर वह अपनी डायरी को बंद कर देती है
और उसे ख़ुद से छुपा लेती है।

रूठी हुई 'लड़की'
ख़ुद से छिपाई गई तितलियों के संग्रहालय में
स्वप्न देखती है।

नींद के जंगल में जाने कितने जुगनू हैं
जिन्हें वह गिनना नहीं चाहती।

रूठी हुई 'लड़की'
फूलों की ललछौंही करवट को
अपना आईना कहकर पुकारती है
और फिर वह निर्ममता से फूलों को
नोंच देती है।
"काँटों के भला कितने पर्याय होंगे
कुचले हुए फूलों के उससे ज्यादह ही हैं"
उखड़े मन से वह सोचती है।

और तब, रूठी हुई 'लड़की' चाहती है
कि उसे मनाया जाए।

लेकिन रूठी हुई 'लड़की' मानना नहीं चाहती
वह मनाए जाने से ही रूठी होती है
या वह रूठी होने पर मान जाती है।

और तब सहसा, उसका फ़ोन काँपता है:
मन की प्रत्यंचा पर एक कंपन!
वह लपककर उसे पर्स से निकालती है
और 'मैसेंजर' चेक करती है।

सात शब्दों का एक वाक्य,
जिसमें तीन शब्दों का
एक इंद्रधनुष।

बस इतनी भर तो बात थी!
इतनी भर ही!

और तब वह आख़िरकार मुस्करा देती है।

नहीं, एक अधूरा चंद्रमा नहीं, सचमुच की मुस्कराहट:
तीन दोपहर और दो रातों के गलियारे में खिली हुई।

धूप में झिलमिलाती तितली!

‘आकांक्षा’ में ‘कां’ पर लगी बिंदिया

‘लड़की’ आईने से बातें करती है।

अभी-अभी वो नहाकर आई है
देह पर मेंह की स्मृति का शीत है
बालों में पावस का परस
उसके दाहिने कंधे पर केशों का
एक भव्य प्रपात झरता है।

हाथों की रोमावलियों को वह सहलाती है
जिनमें अभी नहान का रोमांच।
जबकि वन-प्रांतर में
कितने ही दावानलों का दाह!
कितनी ही झुलसी हुई दूर्वाएं!

‘लड़की’ आईने से बातें करती है
और मुस्करा उठती है
अपनी आँखों को ख़ूब ग़ौर से निहारती है
उनमें करीने से काजल लगाती है
एकबारगी तो उसे यक़ीन ही नहीं आता
कि ये आँखें अब भी अपनी जगह क़ायम हैं
जस की तस!

कटी पतंग ने कितने सीमांतर लाँघे
हाथ से छूटी डोर के पास
अब भला इसका क्या हिसाब?

दर्पण पर कई बिंदियाँ चिपकी हैं
उन्हीं में से एक बिंदी चुनकर
वह अपने माथे पर लगाती है
फिर उसे वहाँ से हटाती है
और फिर ठीक से लगाती है
माथे के एकदम बीचोबीच

एक कत्थई-सी बिंदिया
जैसे ‘आकांक्षा’ शब्द में
‘कां’ पर लगा अनुस्वार।

"धूप कोठरी के आईने में खड़ी हँस रही है,"
कवि की पंक्ति सहसा उसके मन में गूँजती है
अब वह खिलखिला उठती है।

"बरखा में सिहरती धूप के बारे में भी
कवि ने कभी सोचा होगा",
यह सोचने लग जाती है,
"और धूप में बदन सुखाती
बारिश के बारे में?"

‘लड़की’ बाल संवारती है और चोटी गूंथती है
‘लड़की’ नाक में मोती पहनती है
‘लड़की’ होंठों पर लिप-ग्लॉस लगाती है
और देर तक उनकी ललछौंही रंगत का
मुआयना करती है।

‘लड़की’ आईने से बातें करती है
और पल भर को ख़ुद पर
इतरा जाती है।

"काश, काश, काश!!"
मन ही मन वह सोचती है,
"जो मैं आईना होती और तुम मैं,
तो तुम जानते, अपने को पूरा सौंप देना
कैसा होता है।

ऐ आइनों के शहर में रहने वाले,
काश, काश, काश!"

एक लड़की चल रही है

एक लड़की चल रही है।
चलते-चलते कुछ सोच रही है!

हरा सलवार-सूट
जिस पर पीले फूल
आँखों में ख़ूब काजल
कानों में सफ़ेद मोती
होंठों पर लिप ग्लॉस
जिसमें स्ट्रॉबेरी की महक।

पतली-दुबली है
कंधे पर उसका बैंजनी पर्स झूल रहा है
पर्स के भीतर सेलफ़ोन है
सेलफ़ोन के भीतर
उसकी दुनिया!

उस दुनिया की वह इकलौती सम्राज्ञी है
अंगुलियों पर उसे नचाती है!

जबकि अभी इतनी धूप
कि माथे पर उसके पसीने की बूँदें
चिलचिला आई हैं!

दुपट्टे के छोर से पसीना पोंछती है
चलती रहती है चलते-चलते कुछ सोचती रहती है!

एक मैसेज आता है
वह चलते-चलते ही मैसेज पढ़ती है
मैसेज पढ़कर मुस्कुरा देती है
पलभर रुकती है,
एक स्माइली बनाकर
भेज देती है।

उसकी मुस्कराहट उसकी ग़ैरमौजूदगी है!
वह अपनी मुस्कराहट देकर अपने को बचा लेती है!

कितनी देर से उसे निहार रहा हूँ
वह कुछ सोच रही है और मैं सोचता हूँ
वह क्या सोच रही होगी।

मई की इस दोपहर जब दरख्तों पर सुग्गे तक
दम साधे सो रहे और एक पत्ता भी नहीं खड़कता
मैं यही सोच रहा हूँ कि वह क्या सोच रही है।

कि वह क्या सोचती होगी।

कि उसकी सोच के भीतर कितनी जगह होगी
जहाँ पल भर रुका जा सके, ठहरा जा सके।
मुझे उसकी सोच का पोस्टल एड्रेस मिले
तो शायद उसके नाम भेजूँ एक चिट्ठी!

पर लड़की तो बस चल रही है।
चलते-चलते कुछ सोच रही है!

‘लड़की’ : एक सुबह

लड़की ट्रेन में है।

खिड़की से दिखने वाली पटरियाँ जैसे उसके भीतर
खरोंचों की तरह खिंची हैं!

जबकि, उसकी आँखें समुद्र में दूर छिटक आई
नावों की तरह।

सूत के सफ़ेद कपड़े से उसने
अपने चेहरे को छुपा रखा है।
हल्के रंग का लिबास,
आँखों में काजल,
कानों में ईयरफ़ोन।

एक लंबे मोड़ पर रेलगाड़ी किसी सांप की तरह लहराती है।

जाने कितने ‘सुस्त क़दम रस्ते‘
उसके भीतर के जाने कितने मोड़ पर छूटे होंगे,
जाने कितनी ‘तेज़ क़दम राहें!’

सामने की सीट पर बैठे पुरुष
नज़र बचाकर उसे निहार रहे हैं
उसकी आँखें जब-तब उनकी आँखों से
टकरा जाती है
एक अनुपस्थित-सी दृष्टि
जैसे बारिश की खिड़की में
एक सफ़ेद रोशनी।

मानो, उन सबसे कह रही हो:
"तुम मुझे पा नहीं सकते,
जो यह सूत का लिबास ना होता
मेरे बदन पर, तब भी!"

अपने सेलफ़ोन पर पूरे रास्ते गाने सुनती आई है वो।
आख़िरी गाना बजता है: "पूरे से ज़रा-सा कम है।"

अब वह प्ले लिस्ट को पॉज़ कर देती है
और सोच में डूब जाती है।

"पूरे से क्या कम है? पूरा ही तो है।
जैसे कि, मेरा यह अधूरापन।
एक रत्ती कम नहीं।
पूरे का पूरा अधूरापन है!"

ट्रेन टर्मिनस की सर्पिलाकार लकीरों पर रेंग रही है।

लड़की प्लेटफ़ॉर्म पर धीमे-धीमे क़दम रखकर चलती है
मानो कहीं उसके क़दमों की आहट से ही
उसके भीतर सोया कुछ जाग न जाए।

लड़की दफ़्तर पहुँचती है,
अपने मेल्स चेक करती है
कुछ के रिप्लाई लिखकर
सेंड पर क्लिक कर देती है।

उसकी डेस्क पर स्माइली बॉल्स हैं
जो उसे देखकर मुस्कराती हैं।

एक बड़े-से मग में स्केचपेन का इंद्रधनुष है!

लंच टाइम से पहले वह अपना
फ़ेसबुक स्टेटस अपडेट करती है:

"एक पल देख लूँ तो उठता हूँ
जल गया सब
ज़रा-सा रहता है
जाने क्यूँ दिल भरा-सा रहता है!"

तेरेज़ा की ‘स्टॉकिंग्स’

तेरेज़ा ने कहा, "मैं सोने की ‘कोशिश’ कर रही हूँ!" रात के सवा तीन बजे थे। मैंने कहा, "कोशिश करोगी तो सो कैसे सकोगी? सोने के लिए कोशिश करना छोड़ देना होता है।" तेरेज़ा मुस्कराई होगी, ठोढ़ी पर तिल का स्याह तारा लिए।

तेरेज़ा कुछ देर चुप रहती है, और फिर कहती है: "सुनो, तुम ‘समरटाइम’ की एक कॉपी ख़रीदो। मैं उसे फिर से पढ़ना चाहती हूँ। हम उसे एक साथ पढ़ेंगे। ठीक?" मैं मुस्कराकर कहता हूँ: "ठीक!" और चुप हो जाता हूँ! मेरी धमनियों तक पर चुप्पी की धुंध घिर आती है। मैं उससे कई मील के फ़ासले पर था लेकिन मैंने महसूस किया कि उसकी आँखों में अभी नींद नहीं है। मैंने कहा, "तुम्हें याद है, ‘समरटाइम’ में, व्हेन जॉन मेक्स लव टु जूलिया, तो वह कमरे में ग्रामोफ़ोन के रिकॉर्ड्स चला देता है: शायद शूबर्ट या शोपां के संगीत-अंश। वह चाहता है कि वे सिम्फ़नी की लय पर प्रेम करें। और वह उसकी देह पर जैसे ‘मेडिटेट’ करता था, आँखें मूंदकर, हाथों से उसकी देह के कोनों-अंतरों को पढ़ता, किसी आदिम लिपि की तरह। ये फ़िलॉस्फ़र्स भी कितने ‘लाउज़ी लवर्स’ होते हैं ना।" अबकी तेरेज़ा ठठाकर हंस पड़ी होगी, रात को रूई की तरह चींथते हुए।

मैं उससे कहता हूँ, "और तुम्हें याद है पहले चैप्टर में जूलिया के ‘बिट्रेयल’ की शुरुआत कैसे होती है? जूलिया की मुलाक़ात जॉन से किसी शॉपिंग मॉल में होती है और सहसा जॉन का एक अनिच्छुक स्पर्श जूलिया को छू जाता है। वह देर तक उस स्पर्श को अपनी देह पर महसूस करती रहती है। घर लौटकर वह आईने के सामने निर्वसन होती है और उस स्पर्श को खोजने की कोशिश करती है, मानो किसी दाग़ की तरह उसे वह कहीं मिल जाएगा। ज़ाहिर है, वहाँ कुछ भी नहीं होता है: सिवाय एक युवा लड़की की नंगी निष्कलुष देह के: सफ़ेद रोशनी में भींजती हुई!"

तेरेज़ा अचरज से कहती है, "बट जस्ट इमेजिन, तुमने ‘समरटाइम’ पूरे सात साल पहले पढ़ी थी, है ना? तुम्हें इतना सब याद है!" मैं हंसकर कहता हूँ, "मुझे कभी कुछ भूलता नहीं। मेरी याददाश्त क़ब्रगाहों की तरह अमर है।" तिस पर तेरेज़ा खिलखिलाई होगी, आवाज़ में झरनों के घुंघरू लिए।

मैं उससे कहता हूँ: "सुनो, तुम्हें ‘नैशविल’ की याद है? मैंने जब तुम्हारी वो ‘नैशविल’ वाली तस्वीर देखी तो मुझे यह देखकर बहुत अजीब लगा था कि तुमने उसमें ‘स्टॉकिंग्स’ पहन रखी हैं। जाने कितनी फ़िल्मों और नॉवल्स में लड़कियों को वे महीन जालीदार वूलन ‘स्टॉकिंग्स’ पहनते और उतारते देखा-पढ़ा है, लेकिन तुम्हें वैसे देखना ‘सेंसेशनल’ था। तुम्हारी सर्द सफ़ेद टाँगों को निगलती हुई ज़ुराबें!" तेरेज़ा बोली, "मैं क्या करती, वहाँ सर्दियाँ ही इतनी थीं। जाड़ा और नींद। पता है, मैं नींद के लिए ‘होमसिकनेस’ महसूस करती हूँ। जैसे नींद मेरा घर हो और मैं अपने घर से बाहर हूँ: मेरा जागना मेरा ‘नैशविल’ में होना है, ‘स्टॉकिंग्स’ पहने हुए, ठिठुरते हुए, पराये देश में परायी भाषा के साथ। और नींद मेरा घर है।"

मुझे लगता है अब तेरेज़ा चुपचाप कुछ सोचने लगी है। फिर शायद वह अकारण मुस्करा देती है। और तब मुझे महसूस होता है कि उसकी मुस्कराहट मेरा 'घर' है। और उसकी उम्र के वे लम्हे भी, मुझसे सुदूर छिटके हुए, जिन्हें मैंने जिया नहीं। मैं उससे कहता हूँ: "सुनो, तुम्हें नींद नहीं आ रही है ना। तुम चाहो तो मेरे 'घर' में आकर सो सकती हो, जो कि अभी और कुछ नहीं, महज़ तुम्हारी यादों का असबाब है: तुम्हारे स्कर्ट, स्टॉकिंग्स, छल्लों और मुस्कराहटों से भरा हुआ।" तेरेज़ा कहती है, "मैं आ रही हूँ, अपने कमरे को साफ़ कर लो और मेरी 'स्टॉकिंग्स' को तह करके अपनी शेल्फ़ में सहेज लो, कि अभी मुझे 'स्टॉकिंग्स' क़तई नहीं पहनना है।"

अच्छा लिसन, मैं अपना क्लचर लैंसडौन में भूल आई हूँ!

पहाड़ पर बना वो शहर था
जिसके पंख गल गए थे।

और वो इसलिए कि उसके पंख नमक से बने थे
और ये अगस्त का महीना था
बुरान्स की टहनियों तक बादल उतर आए थे
और पूर्व दिशा में स्याही का एक फ़ाहा
चू रहा था।

गले हुए पंखों वाला शहर
पहाड़ पर किसी नगीने की तरह चमक रहा था
रिबन जैसी सड़कें उसे जैसे तैसे दूसरी बस्तियों से
बाँधे हुए थीं।

उसी शहर में गई थीं तुम
सन् अठारह सौ अट्ठासी में जिसको एक फ़िरंगी अफ़सर ने
कैंटोनमेंट टाउन की तरह बसाया था
उसी लाटसाहब के नाम पर
शहर का नाम भी रख दिया गया था:
लैंसडौन।

और उसकी मैम साहब के लिए
कोटद्वार के मेहनतक़शों ने बर्फबारी में भी
स्वेद बहाकर बनाया था
गोथिक शैली में सेंट मैरी का वह कैथेड्रल
जिसमें बलूत की लकड़ियों के दरवाज़े पर
दाहिनी ओर अपनी बाँह टिकाकर
खड़ी थीं तुम।

और तुम्हारे निर्बन्ध बाल लहरा रहे थे उस हवा में

जिसमें हिम का शीत।

मैंने उससे कहा कि "तुमने बाज़ी मार ली
कितनी मुद्दत से मेरी ख़ाहिश थी कि
लैंसडौन के सेंट मैरी चर्च में जाकर
बलूत की उस गंध को अनुभव करना है
और उसकी उस बड़ी सी हरी आँख को देर तक निहारना है
जो ऑवेर के गिरजे की नारंगी छतों को
मुँह चिढ़ाती है।"

उसने अपनी मुस्कराहट के तरन्नुम में कहा
"ठीक है, तुम अब चले जाना
और मुझसे विपरीत दिशा में
बाईं ओर खड़े हो जाना।"

और तब मुझको लगा कि
शायद वो अपनी ग़ैरमौजूदगी को भी
मुझसे बचा ले जाना चाहती थी
जबकि मैं उसकी ग़ैरमौजूदगी को छूने के लिए ही
लैंसडौन जाना चाहता था।

मैंने उससे कहा
"तुम्हारे खुले हुए बाल जब हवा में लहराते हैं
तो सहसा तुम एक बड़ी लड़की सी
लगने लगती हो।"

उसने कहा, "ऊप्स, मैं अपना क्लचर तो
लैंसडौन में ही भूल आई!"

फिर जैसे एक आईविन्क के साथ बोली,
"जब तुम जाओगे तो लेते आना।
डार्क ब्राउन कलर की हेयरक्लिप है,
ये देखो फ़ोटो!"

और तब मुझे लगा कि वो शहर ही
पहाड़ के बालों में किसी क्लचर की तरह खोंसा गया है
काश कि मैं पूरे का पूरा लैंसडौन ही
उसके लिए ले आता!

दिल्ली की उमस में इससे बेहतर तोहफ़ा

और क्या हो सकता था कि वो अमेज़ॉन का गिफ़्ट पैक खोलती
और उसमें लैंसडौन देखकर चौंक जाती।
वह 'वॉव' बोलती और उसके होंठ गोल घूमकर
छल्ला बन जाते
गर्दन पर मौजूद तिल को
छाँह में छुपाते हुए।

और तब मैंने सोचा कि नमक के शहर से
लौटकर आई उस लड़की के होंठों पर अभी
नमक की कितनी गाढ़ी परत होगी।

मैं एक बार उसके खारेपन को
अपनी जीभ से चखना चाहता था!

उसने कहा "सो डन, तुम मेरा क्लचर लेकर आओगे"
और मैंने कहा, "हाँ, लेकिन अगर तुमने यह बात किसी को बताई
तो वह क्लचर खो जाएगा।
क्योंकि जिन चीज़ों के बारे में बहुत बातें की जाती हैं
वे बहुत ज़ाहिर हो जाती हैं और
देर-सबेर चोरी चली जाती हैं।
इसलिए यह एक राज़ रहे!"

उसने कहा, "ठीक है, और तुम?
तुम तो किसी को नहीं बताओगे ना!"

मैंने कहा, "मैं तोमाश की तरह अपने मुँह को भींचकर बंद कर लूँगा
क्योंकि तोमाश को लगता था कि अगर उसने कुछ कहा तो
उसके मुँह से सोने की कनी चाँदी के बेसिन में गिर जाएगा
और खन्न सी एक धात्विक ध्वनि इन्सब्रुक की टैवर्न में
खनखनाकर गूँज उठेगी!"

जैसे कि वो क्लचर सोने का बना हो।
वैसे भी लड़कियों द्वारा पहने जाने वाले तमाम ज़ेवरों में
क्लचर ही मेरा सबसे पसंदीदा ज़ेवर है!

और तब मैंने सुनी
उसकी हंसी की चमकीली ध्वनि
जिसका प्रतिबिम्ब पहाड़ पर
किसी नगीने की तरह चमकते
उस शहर की शीशे की खिड़कियों पर

तैर गया।

और मैंने हथेली बढ़ाकर ढाँप दिया उस कौंध को
ताकि दुनिया की नज़रों से छुपा सकूँ
उसका वो डार्क ब्राउन क्लचर!

मैं अलविदा ना कहूँगा तुम्हें तुम चाहो तो चली जाना

मेंह बरसा था और मिट्टी गीली थी।
तुम्हारी जूती गीली मिट्टी में धंस गई थी।
बस इतना ही।

तुम्हें जाना था हमेशा की सरहद के उस तरफ़
और तुम्हारी लॉरी तैयार थी।
पर तुम लड़खड़ा गई थीं और हाथों से छूटकर
बिखर गए थे कुछ फल, कुछ तरकारियाँ।
मैं दौड़कर आया और उन्हें चुनने में
मदद की थी तुम्हारी।
बस इतना ही।

विदा के उस हृदयविदारक क्षण में
बस इतना ही कर पाया था
जबकि शीशम-वन के तमाम ओस के मोती भी कम थे
अगर देना चाहता तुम्हें भेंट में
एक सुघड़ कंठहार।

तुम चली गई थीं अपनी भीगी हुई शुक्रिया
तक को साथ लिए।
मैं वहीं खड़ा रहा था हर उस चीज़ को सहलाता
जिसे तुमने कभी छुआ नहीं।

बस, मिट्टी में तुम्हारी जूती का निशान रह गया था
और वह भी कुछ ही देर
क्योंकि बारिश तेज़ हो चली थी
और तब वह चंद्रमा भी /गल गया धीरे-धीरे।

जिन-जिन चीज़ों को बारिश मिटा देती है
वे जन्नत का बूटा बन जाती हैं।

पर जो तुमने रोपा था मेरे भीतर
देखो तो अब भी हरा है
जाने किस मौसम में
फूटी थी कोंपल / मिट्टी थी वो
जाने किस / इलाक़े की।

सुनो, मैं अलविदा ना कहूँगा तुम्हें
तुम चाहो तो चली जाना।

तुम्हारे जाने का चंद्रमा
कभी ना ढल सकेगा मेरे भीतर
चाहे बारिश कितनी तेज़ हो और
भींजकर कितना ही भारी क्यों ना हो गया हो
मेरे दिल का रूई का फ़ाहा।

तुम चाहो तो लौटकर न आना
पर अलविदा ना कहूँगा /तुम्हें कभी।

एक असंभव प्रेम के दौरान संगीत

हर अंत के बाद फिर-फिर आरंभ-
हिलते हुए सिर अब हॉल में तैरने लगे हैं
मैं गड़बड़ा गया हूँ स्वरों की स्मृतियों के भीतर
साँझ का शुद्ध कल्याण
बंद होने लगा है तुम्हारी काजलसनी
आँखों के अनमने किवाड़ में।

तानपूरे के पेड़ के पीछे से झाँकती हो तुम
पंचम का परदा हटाकर
सभा में-
बस बची रह गई है तुम्हारी सुनिश्चित मुद्रा
अंतरालों में बिला गया है अनन्त
समय की उतरती सीढ़ियों पर
सूखी नदियों के निशान हैं।

आलाप के गले में अटक चुके हैं पहाड़
हॉल के बाहर फ़रवरी की ठण्डी शाम
तुम्हारी साँसों की तरह बिछी है
संगीत की दीवार पर पीठ टिकाकर
सुनता हूँ मैं-
तुमने हवा से दो ख़ामोश तार चुनकर
बाँध लिए हैं अपने साज़ पर।

नहीं, कोई भी नाम नहीं उस लय का
जो तुम अपने तानपूरे में सम्हाले हो
एक अलक्षित चाह के भीतर
मैं सप्तकों के चेहरे भूलने लगा हूँ
सभा उतारने लगी है
अपनी विलम्बित-देह

हज़ार रास्तों से सम पर लौट रही है धरती
और मैं एक असंभव प्रेम की गुफा के मुहाने पर खड़ा

परछाइयों को अँधेरे में धकेल रहा हूँ।

समय ही प्रतीक्षा है

मैं समय के एक हाशिए भर पर
नहीं करता तुम्हारी प्रतीक्षा
जितना भी समय है
तुम्हारी प्रतीक्षा के ही
दायरे में है!

समय ही प्रतीक्षा है!

जैसे तुम्हारी चाहना ही समूचा जीवन
मैं जीवन के एक हिस्से भर में ही
नहीं चाहता तुम्हें!

रात एक हेयर क्लिप थी
तुमने उतारकर रख दिया है उसे
और बालों में खोंस लिया है
भोर का फूल

उसकी दीप्ति से जागा हूँ मैं
और जागकर पाया है कि जागना
और कुछ नहीं तुम्हारे होंठों पर रखी
मुस्कराहट भर है

जब जब मुस्कराती हो तुम
रौशनी का रूमाल फैलता है
आँखें मलते जग जाती है दुनिया
तुम नज़रें घुमाओ
तो वसंत बन जाता है पतझड़

पतझड़ कुछ और नहीं
डूब जाना है तुम्हारा
उदास ख़यालों में

और चाय की तमाम प्यालियों पर दर्ज़ है

तुम्हारे ही तो होंठों की जुम्बिश!

दिन, महीने, साल!

लड़का: "अच्छा सुनो, तुम मार्च को पहनकर बहुत प्यारी लगती हो!"
लड़की: "रियली? बट हैलो, दिस इज़ जुलाई। पता है, जुलाई का नाम जूलियस सीज़र के नाम पर रखा गया है!"
लड़का: "हम्म्म। बट लिसन, मैं अकसर सोचता हूँ कि दिसम्बर की दरमियानी धूप एक आईनाघर है, जिसकी खिड़की में बैठी तुम सुस्ताती हो। तुम मेरी जनवरी हो, मैं तुम्हारा मार्च, तुम मार्च को पहनकर..."
लड़की: "ओफ़्फ़ो, तुम्हें तो "कैलेंडर" होना चाहिए था!"
लड़का: "हा हा। बाय द वे, कैलेंडर में तीन सौ पैंसठ रातें होती हैं और चार सौ सत्रह चंद्रमा..."
लड़की: "चार सौ सत्रह चंद्रमा! वो कैसे?"
लड़का: "वो ऐसे, कि कैलेंडर एक नदी है, मार्च उस नदी में बहता एक लाल फूल। तुमने कभी रेड वाइन का प्याला देखा है? वो मेरा दिल है! और, चाँद एक फ़ानूस है। कैलेंडर की उस नदी में चंद्रमा के पूरे चार सौ सत्रह बिम्ब झिलमिलाते हैं, इसलिए..."
लड़की: "ओफ़्फ़ो, तुम और तुम्हारी बातें!"
लड़का: "हाँ, लेकिन चाँद के बारे में कोई भी बात महज़ बात कहाँ होती है, वह तो चाँदनी का पश्मीना होती है, जिसे हमने पहन लेना है एक रोज़, और केवल वही पहनना है!"
लड़की: "बट, वेट, चाँद तो एक सैटेलाइट है ना?"
लड़का: "तुम भी ना!"
लड़की: "ओहो, मिस्टर मार्च तो मायूस हो गए। अच्छा एक बात कहूँ?"
लड़का: "हम्म, बोलो।"
लड़की: "तुम अपनी कमीज़ का ऊपर वाला बटन खुला रखते हो ना। उस दिन तुम्हारा बटन लगाते हुए मैंने देखा कि तुम्हारी कमीज़ की जेब में एक रविवार रखा है।"
लड़का: "हाँ, मैं अपने तमाम रविवार अपनी कमीज़ की जेब में रखता हूँ, काँच के कंचों की तरह ऐहतियात से सम्हालकर, कि कहीं खो ना जाएँ।"
लड़की: "तो सुनो, मुझे तुम्हारा एक रविवार चाहिए। मिलेगा ना? प्लीज़, ना मत बोलना। मुझे तुम्हारी कमीज़ की जेब से एक रविवार चाहिए।"
लड़का: "हम्म, ठीक है, सोचकर बताता हूँ। लेकिन, लेकिन मैंने तो सोचा था अपनी उम्र के तमाम रविवार अप्रैल के दरख़्त पर उगने वाले तमाम पत्तों की तरह तुम्हारी हथेली में एक दिन रख दूँगा, लेकिन अगर तुम्हें केवल एक ही चाहिए, तो भी कोई हर्ज़ नहीं।"
लड़की: "ओह सुनो, सुनो! तब तो मुझे तुम्हारा 'कैलेंडर' बनना है! तुम्हारे तमाम चंद्रमा और सितारे, सुबहें और शामें, दिन, महीने, साल! तुम्हारे सारे मार्च और फरवरियाँ, सारे रविवार, सारे

सप्ताहांत, सब मुझे चाहिए!"
लड़का: "ऐसा? तो सुनो:
"तुम मेरे कैलेंडर की महज़ एक 'तारीख़' बन जाओ, मैं तुम्हारा पूरा कैलेंडर बन जाऊँगा। तुम्हारे दाहिने हाथ की अंगुली पर सफ़ेद मोती की तरह झिलमिलाती, वायदों की मुहर वाली फ़रवरी की एक तारीख़! बनोगी ना?"

यह ज़िन्दगी के उन चंद छोटे अंदेशों में से एक है

अकसर ऐसा भी होता है कि आप 'उसको' इस अंदेशे से 'गुड नाइट' विश नहीं करना चाहते कि कहीं वह पहले ही सो तो नहीं चुकी है, क्योंकि तब आपका 'अनुत्तरित' मैसेज देर तलक आपकी स्क्रीन में से आपको घूरता रहेगा, 'अभी तक पढ़ा नहीं गया' की तकलीफ़देह तख्ती लिए क्योंकि आपने तो अभी सारी रात जागना है।

यह ज़िन्दगी के उन चंद छोटे अंदेशों में से एक है लेकिन यह रंज नहीं है। रंज तो यह है कि अपने अनुत्तरित मैसेज के साथ पूरी रात जागते हुए आप यह सोचें कि कहीं ऐसा ना हो, 'वो' सुबह उठे तो सबसे पहले अपने फ़ोन में एक 'गुड नाइट' मैसेज पाए, जिसका कि जवाब नहीं दिया गया था और 'वो' इस बात से इतनी ख़ाइफ़ हो जाए कि तुरंत हड़बड़ी में आपको उसके बदले में चंद मुस्कराहटों, फूलों और चाय के प्याले के साथ एक 'गुड मॉर्निंग' मैसेज लिख भेजे: प्यार के साथ उतना नहीं, जितना कि 'एम्बैरेसमेंट' के साथ और यह अपने आप में कोई माक़ूल चीज़ ना हो।

मसलन, आप हरगिज़ नहीं चाहें कि 'उसकी' सुबह इस तरह से शुरू हो।

मैं अपने भीतर ऐसे जाने कितने 'अनपोस्टेड' मैसेजेस के गुलदस्ते लिए बैठा हूँ, जो कभी भेजे नहीं गए। ज़िन्दगी ऐसी ही अनेक कहानियों से जुड़कर बनती है जो कहीं दर्ज नहीं की जा सकीं!

तुम्हारे ‘ऑनलाइन’ होने का सितारा

तुम्हें मालूम नहीं क्योंकि मैंने कभी बताया नहीं, लेकिन तुमने जब अपना नंबर दिया उससे पहले तुम्हारा नंबर मुझे हासिल हो चुका था।
भूल तुम्हारी ही थी, इतनी बेपरवाही भी भला कोई करता है ??
‘अमेज़ॉन’ वाले कोई प्रोडक्ट भेजते हैं तो पैकेज पर ‘इनवॉइस’ चस्पा कर देते हैं। ‘इनवॉइस’ पर आपके डिटेल्स दर्ज होते हैं: पोस्टल एड्रेस और फ़ोन नंबर। उस दिन तुमने अमेज़ॉन से ‘लुई बेल्जियम’ का ब्राउन हैंडबैग बुलवाया था। कॉलेज की बेंच पर धूप में बैठकर तुमने अपना पार्सल खोला, हैंडबैग निकाला, एक ‘वॉव’ की मुद्रा में तुम्हारे होंठ घूमकर गोल हो गए थे। तुमने उसे जी भर कर निहारा, मुस्तैदी से मुआयना किया, क्लास की रिंग बजी तो ख़ाली पैकेज वहीं छोड़कर चली गई।
इतनी बेपरवाही भी भला कोई करता हैं?
जिन जगहों पर तुम जाती रही हो, उन जगहों पर तुम्हारे बाद लौटकर जाने और जिन चीज़ों को तुमने छुआ था, उन चीज़ों की नमी को तुम्हारे बाद सहलाने की अपनी आदत के चलते मैं चला गया था वहाँ, तुम्हारी ग़ैरमौजूदगी के गलियारे से होकर, और उस ख़ाली पैकेज को छूने लगा था ऐहतियात से मानो वह तुम्हारी हथेलियाँ हों कि देखता हूँ: किसी अज्ञात लिपि में दर्ज कूटपंक्ति की तरह तुम्हारा फ़ोन नंबर वहाँ पर मौजूद था।
मैं सहसा सिहर गया।
क्या इन जादुई बेबूझ अंकों के पीछे तुम्हारी आवाज़ रहती थी, तुम्हारे होने की छुअन का सबसे क़रीबी छोर, एक ऐसी शै, जो तुमसे जुड़ी थी, एक खिलखिलाहट, एक चुहल, एक चीख?
काँपते हाथों से उस नंबर को अपने फ़ोन में दर्ज कर लिया था, ‘वॉट्सएप्प’ की ‘कॉन्टैक्ट लिस्ट’ में एड कर लिया था। एक ख़ाली पन्ना: जिसमें ऊपर एक हरी स्ट्रिप में तुम्हारा नाम, वह नाम जिस नाम से मैं तुम्हें पुकारता था, और तुम्हारी मुस्कराती हुई डीपी।
और उस रात, सहसा मैंने देखा कि तुम ‘ऑनलाइन’ थी: ‘ऑनलाइन’ का वह संकेत मेरी रात के आकाश पर एक सितारे की तरह उगा था: मैं मन ही मन मुस्करा दिया था।
तुम ‘ऑनलाइन’ थीं, मेरे होने से पूरी तरह बेख़बर और पल भर को मुझे महसूस हुआ, मानो मैं पहले ही मर चुका हूँ और अपनी क़ब्र के पार से किसी प्रेत की तरह तुम्हें निहार रहा हूँ। कि इस लाचारी का अपना एक तल्ख़ रोमांस हो।
बाद उसके, हमारी क़ुरबत बढ़ी। तुम मेरे मैसेंजर में मुझसे बातें करती थीं और मैं सधे हुए लफ़्ज़ों में तुम्हारी बातों का जवाब देता था। और तब, एक दिन तुमने कहा: "क्या तुम मुझे अपना वॉट्सएप्प नंबर दोगे?”
मैं मुस्करा दिया।

मैंने तुमसे नहीं कहा कि मेरे पास पहले ही तुम्हारा नंबर है। यह भी नहीं कि मैं जानता हूँ तुम्हारी वॉट्सएप्प डीपी क्या है। यह भी नहीं कि मैं जानता हूँ तुम रोज़ रात 11 बजकर 34 मिनट से 12 बजकर 06 मिनट के दरमियान एक बार ज़रूर ऑनलाइन आती हो, कोई 40 सेकंड तक वहाँ रहती हो, 'ऑनलाइन' का वह शुक्र तारा मेरे आकाश पर दिपदिपाता है और फिर बुझ जाता है। और हर बार मुझे लगता है, जैसे मैंने तुम्हें पाकर खो दिया है,
लेकिन मैंने तुम्हें यह सब नहीं बताया।
मैं अनकहे का एक व्योम होना चाहता था, अनजिये का एक बेछोर क्षितिज।
तुमने मेरा नंबर मांगा, मैंने मुस्कराकर दे दिया। तुमने मुझे 'हाय' मैसेज भेजा, मैंने एक मुस्कराहट की तितली तुम्हें भेज दी। तुमने कहा, "अच्छा लग रहा है यहाँ वॉट्सएप्प पर तुमसे बात करके, ये हमेशा मैसेंजर से ज़्यादा पर्सनल मालूम होता है", और मैंने सिर हिलाकर कह दिया, "सच है।"
मेरी रात के आकाश को तुम्हारी बातों की मंदाकिनी भरने लगी। और तब, सहसा मुझे लगा कि कुछ था, जिसे मैंने खो दिया है। पहले वाले खो देने से ज़्यादा उदास, ज़्यादा मायूस। कि अब मैं 'ज़ाहिर' हूँ, तुम्हारी 'ज़द' में हूँ, कि अब तुम मुझे 'देख' सकती हो और अदृश्य की हिमशिला में अमरत्व की संतान मैं अब धीरे-धीरे पिघलता जा रहा हूँ, तुम्हारे सामने निर्वसन होता जा रहा हूँ, और मैं जितना ज़ाहिर हूँ और तुम जितनी एक्सेसिबल, उतना ही मैं तुम्हें खोता चला जा रहा हूँ।
फूलों, मुस्कराहटों, चंद्रमाओं, गुड मॉर्निंग और गुड नाइट से भरे मेरे एकांत में अब मुझे तुम्हारे 'नहीं होने' की 'कमी' खलती है, अभाव का अभाव खटकता है।
पाने की हर कोशिश खोने का एक प्रयोजन है।
जगहें बनाने की कोशिशें बहुत जगह घेरती हैं।
और प्रतीक्षाएँ ही प्रेम का आवास है।
ना जाने क्यों, हम अपने एकांत में ही सबसे अच्छे प्रेमी होते हैं।

गोत्रनाम तो भूल गया, किन्तु नाम था गायत्री

मुझको बारम्बार याद आती है वह लड़की!
गोत्रनाम तो अब भूल गया, किन्तु नाम था गायत्री।
क्षत्रिय समाज की किसी 'परिणय परिचय पुस्तिका' में नाम, चित्र, विवरण देखने के बाद महज़ एक फ़ोन लगाकर लड़की देखने उसके घर जा धमके थे हम!
सन् 2009 की बात रही होगी। शहर था उज्जैन। किस मोहल्ले गए थे, ये तो अब पूरी तरह विस्मृत। भागसीपुरा या पानदरीबा, डाबरीपीठा या लखेरवाड़ी, कार्तिक चौक या मुसद्दीपुरा, कुछ भी याद नहीं! हाँ, इतना अवश्य याद है कि हल्के अँधेरे से भरा मध्यवर्गीय घर था। मेरे देश के लाखों-करोड़ों घरों जैसा एक घर, जिसमें बैठकख़ाने में सस्ते सोफ़ों पर गाढ़े रंग के कुशन।
मालूम हुआ तब वह घर पर नहीं थी!

"अभी बस आती ही होगी", उसकी माँ ने लगभग अनुनय भरे अतिशय कोमल स्वर में कहा। तब अपनी अधीरता पर बरबस ही क्रोध आ गया। अगर थोड़ा और समय लेकर आते, तो अपनी पसन्द का सुग्गापंखी सलवार पहनकर तैयार रहती वह, होंठों पर चाहे नहीं लगाती लाली!

अतिथि के पधारते ही रसोई गैस के चूल्हे पर चाय चढ़ा दी जाए, वैसा ही कुटुम्ब। हवा में रसोई गैस और चायपत्ती की मिली-जुली महक तैरने लगी। चीनी मिट्टी की प्यालियों में बिस्कुट और नमकीन के साथ फ़ौरन से पेशतर पेश कर दी गई। इस स्वल्पाहार को अभी-अभी छोटे भाई को पनसारी के यहाँ भेजकर मंगवाया गया था!
सहस्रों कोटियों बार इस वसुन्धरा पर दोहराया गया है यह दृश्य!
दरवाज़े की घंटी बजी। 'वही होगी', मैंने मन ही मन सोचा। वही थी!
माँ ने दरवाज़ा खोला और खोलते ही बोली: "लीजिए, आ गई आपकी गायत्री!"
वह वाक्य आज तलक मेरे मन में गूँजता है: "लीजिए, आ गई आपकी गायत्री!"
माँ जैसे पहले ही अपनी बिटिया को मुझे सौंप चुकी थी, जबकि अभी तो गुण भी नहीं मिले, बात भी नहीं पटी, पूछपरख भी कहाँ पूरी हुई!
माएँ कितनी व्यग्र होती हैं कि शीघ्रातिशीघ्र सौंप दे अपनी बेटियों को किसी और को, और तब गंगा नहाएँ!
क्या हो रहा है, कुछ समझ नहीं पाई वह। निमिष भर को मुझे देखा, फिर अपनी माँ को। अगले ही पल ज्यों वस्तु स्थिति स्पष्ट हुई तो सीधे शंख, सीप, कौड़ियों का परदा हटाकर चौके में प्रवेश कर गई। हर हफ़्ते-पखवाड़े की कथा रही होगी यह!

कोई बहुत रूपसी हो, वैसा नहीं था। दरमियानी क़द, गेहुंआ रंग, काजल में डूबी आँखें, घनी बरौनियाँ, दो चोटी। उस रोज़ सिर नहीं नहाया होगा इसलिए नहीं रक्खे थे खुल्ले बाल, या फिर रखे भी होंगे तो घर पहुँचने से पहले बाँध लिए होंगे।

कपाल पर स्वेद-बिंदु! "बड़ी दूर से साइकिल चलाकर आई है निश्चित", मैंने मन ही मन सोचा। सुबह अपना टिफ़िन ख़ुद ही बनाकर निकली होगी, दोपहर को घर लौटकर माँजने होंगे बासन। पीठ पर बस्ता लदा था। कौन जाने कॉलेज में आज हिन्दी की 'प्रगतिवादी' काव्यधारा वाला पाठ पढ़ा हो। मन में क्या मनोरथ बाँधे घर आई होगी, थकी-हारी होगी, शायद भूखी भी।
और उस पर यह विपदा, कि लड़की देखने वाले घर आकर विराजे हैं!
मन ही मन लज्जा से भर गया!

तुरत-फुरत में वह आयोजन पूर्ण हुआ। लड़का-लड़की की भेंट इतनी जल्दी नहीं करवाई जाती है मध्यवर्गीय परिवारों में, सो नहीं हुई। हम अपने घर लौट गए। लड़की वालों के फ़ोन की प्रतीक्षा करते रहे। नहीं आना था फ़ोन सो नहीं आया। उन दिनों बहुत कम हुआ करती थी मेरी आमदनी, देह दुर्बल सी जान पड़ती थी, और जैसे आज है, वैसे निज का निवास भी तब कहाँ था!

निमिष भर उसने जो देखा था, बस वही एक स्मृति आज मेरे मन में है।
कौन जाने, कालान्तर में उसने क्या सोचा होगा। अपने मन में मेरी कौन-सी छवि बाँधी होगी। बाँधी भी होगी या नहीं। मैंने तो मन ही मन मान लिया था उस सरल छवि को परिणीता!

बात आई गई हो गई। मेरा ब्याह कहीं और हो गया, वह भी कहीं ब्याह गई होगी। कौन जाने अभी कहाँ होगी, कैसी होगी। सुख से तो होगी या नहीं!
जीवन के अनंतक्रम में एक थकी हुई क्लान्त दोपहर का यूँ भी क्या मोल। बहुधा स्मरण करने योग्य भी नहीं होती वैसी बातें, किन्तु मेरा चित्त है कि उसे भूलता ही नहीं!

"लीजिए, आ गई आपकी गायत्री", बस एक कहने वाली बात थी! और एक मेरा आकुल अंतर था, जो इसे मान बैठा था सच!

प्रेम के संताप से प्रेम

प्रेम में हम अनेक अदृश्य परीक्षाएँ देते रहते हैं।

भीतर का जाने कौन-सा कोना
सजाते होंगे उन कष्ट साध्य स्वप्नों से,
जो कहीं दर्ज नहीं होते, ना हम चाहते हैं कि
कोई जाने उन्हें।

आत्मसिद्धि भी प्रेम का एक गुण है
जिसके लिए प्रेम करने वाला कठिन परीक्षाओं
से ही सुख पाता है।

प्रेम और आत्मनाश की
एक समान्तर 'ब्रैविटी' होती है,
लेकिन 'आत्म' भी एक कहाँ।

हमारे भीतर प्रेम के संताप से प्रेम करने वाला
प्रेम चाहने वाले से हमेशा संघर्षरत रहता है।

प्रत्युत्तर में प्रेम मिले तो इससे भी
आहत होता है उसका अभिमान।

ख़ुद से नाराज़ रहने की चेष्टा
हमेशा चलती रहती है / प्यार करने वाले के भीतर।

मिर्ज़ा-साहिबा : तीन वाक़िये

1)

और तब साहिबा ने कहा: "मिर्ज़ा, तू मर जा।"
वो हमेशा ऐसे ही कहती, जब भी उसे मिर्ज़ा पर बहुत लाड़ आता।
मिर्ज़ा ने कहा, "मैं मर जाऊँगा तो फुलकारी पेहनकर गिद्दे में मेरा नाम कैसे पुकारेगी तू। याद है तीये पर जो गाना तूने गाया था, उसमें कैसे नाम लिया था मेरा जहान से छुपाकर।" साहिबा बोली, "याद है। चाँदनी के परदों से उभरता एक साया कहकर पुकारा था तुझे बीसियों के बीच और किसी को कानों-कान ख़बर ना हुई थी। पर सुन मिर्ज़ा, तू मुझे अच्छा लग गया है। अब अच्छा लगता ही रहेगा। तेरी उमर के खाते में कित्ते साल जुड़ेंगे, इससे मुझे क्या। पर जिसे मैं प्यार करती हूँ, उसे यही दुआ देती हूँ कि जा तू मर जा।"
मिर्ज़ा बोला, "झल्ली, मुझे कहाँ चाहती है तू। तेरी दुआ क्या फलेगी मुझपे?"

2)

बड़ी बेहलचल दोपहर थी और मिर्ज़ा साहिबा से बोला, "पता है साहिबा, मैं तेरी याद से क़त्तई बरी नहीं हो सकता।"
साहिबा बोली, "जो आशिक़ क़त्तई क़त्तई बोलते हैं, वो ही सबसे पहले भूल जाते हैं।" मिर्ज़ा बोला, "साहिबा जान, भूल जाना कोई बला नहीं, इश्क़ ना करना बला है।"
साहिबा ठठाकर हंस पड़ी। बोली, "वा रज्जा, तेरे क़ुरबान। इस एक बात पर हल्दी की एक गाँठ और पान का एक बीड़ा तुझपे निछावर।" मिर्ज़ा बोला, "रहने दे, साहिबा, मैंने कौन-सा तेरे से प्यार करना है और कौन-सा तेरे प्यार में सौ बरस ज़िन्दा रहना है।"
साहिबा बोली, "धत्तेरे की मिर्ज़ा, तू तो उखड़ गया. तूने मुझसे प्यार नहीं करना है क्या रे!"

3)

मिर्ज़ा ने साहिबा से कहा, "चाहे जितना रंज हो तुझे, पर तू कभी रोना मत।"

साहिबा मुस्कराकर बोली, "क्यों मेरे आँसुओं से इत्ता डरता है तू|" मिर्ज़ा बोला, "ना रे, पर तू रोएगी तो मर्ज़ और बढ़ जाएगा। मैं तेरे आँसू पोंछने हाथ बढ़ाऊँगा, तू मेरा हाथ थामकर उँगलियाँ चूम लेगी।"
साहिबा ने कहा, "मैं क्यूँ चूमूँगी तेरी उँगलियाँ, हाथ तो मेरा जला है ना। बड़ी फजर साग पका रही थी चूल्हे पर कि अंगार छू गया। देख ना, कैसे लाल पड़ गई हैं उँगलियों की पोरें।"
और तब मिर्ज़ा ने साहिबा का हाथ थामा और उँगलियाँ चूम लीं। बोला, "और अब?" साहिबा आँसुओं के बीच में खिलखिलाकर हंस पड़ी, दुपट्टे से पोंछते गाल।
मेंह के बीच धूप का एक झरोखा!

धत्त! मरे भूत से प्यार करेगी तू!

मिर्ज़ा ने साहिबा से कहा, साहिबा ने मिर्ज़ा का कहा सुना, इसी रीति से बात शुरू हुई।
और तब साहिबा ने पूछ ही लिया, "मिर्ज़ा सच सच बतलाना, तुझे याद आई थी मेरी?" मिर्ज़ा बोला, "ऐसे तो नहीं, मगर जब तेरे गाँव की दिशा में चल ही पड़ा तब ज़रूर एकबारगी आई थी तेरी याद। सोचा था अगर झन्ग आया तो मिलूँगा तुझसे।"
साहिबा बोली, "तो मैं कौन-सा मिले बिना तुझे जाने देती।" मिर्ज़ा बोला: "तुझे बताता ही कौन कि मैं आया हूँ।" साहिबा ने तंज़ में कहा: "रे मिर्ज़ा, तू मुझे बिन बताए मर भी जाएगा क्या!" मिर्ज़ा बोला: "बिलकुल और तुझको कानों-कान ख़बर तक ना होगी क़सम से। तू बरगद पर मेरे नाम का डोरा ही बाँधती रह जाएगी।"
अबकी साहिबा रुआंसी हो गई। रूंधे गले से ही बोली, "तू मर जाएगा मिर्ज़ा तो मैं ख़ूब रोऊँगी।" मिर्ज़ा पसीजकर बोला, "अगर तू रो पड़ी तो मैं दूसरी दुनिया जाने से इनकार कर दूँगा।" साहिबा हुलसकर बोली, "अगर तू इनकार कर देगा तो मैं इक़रार कर लूँगी।"
मिर्ज़ा जानता था कि जीते-जी जो हो ना सके, वो मरे में ही हो सकता है। फिर भी साहिबा को छेड़ते हुए बोला, "धत्त! मरे भूत से प्यार करेगी तू!" साहिबा बोली, "भूत तो ज़िंदा होते हैं रे, मरा तो ताबूत में सोता है।" मिर्ज़ा बोला, "चल, तू इसी बहाने मुझसे प्यार कर ले, तेरे प्यार के सामने मरना क्या है!" तब साहिबा ने तुरुप का पत्ता फेंका, "जो मैंने प्यार कर लिया ना मिर्ज़ा तो तू अमर हो जाएगा।"
मिर्ज़ा ने उसे छेड़ते हुए कहा, "तो क्या तेरे प्यार की अमरबेल मेरी क़ब्र पर लहराएगी?" साहिबा बोली, "वो मुझे पता नहीं।" फिर कुछ ठहरकर बोली, "लेकिन जाने क्यों, तुझे पाने की प्यास मुझमें नहीं जगती।" मिर्ज़ा बोला, "तो तू मुझे खो ही दे ना।" साहिबा ने कहा, "मिर्ज़ा, तू तो रेगिस्तान का दुआओं वाला कुआँ है। प्यास तो ना थी मुझमें पर मेरी दुआ क़ुबूल कर तूने प्यास बढ़ा दी है।" मिर्ज़ा ने लाचारी से कहा, "चल, तेरे वास्ते कुछ तो किया!"
साहिबा मनौती करते हुए बोली, "कुछ नहीं बहोत कुछ किया है रे। अब ज़िंदगी भर लाल धागा बाँधूँगी तेरे चबूतरे के पीपल पर। तू सदा रूखा-सूखा रहे ताकि मैं सदा गूँजती रहूँ तुझमें। कुएँ में पानी भर जाए तो फिर गूँज कहाँ रहनी है उसमें?"
मिर्ज़ा लाजवाब हो गया। बस इतना बोल पाया कि "आमीन!" साहिबा ने भी जवाब में कहा, "आमीन!"
चलते-चलते मिर्ज़ा बोला, "अच्छा सुन, तुझे बहुत प्यार। इसको अपने दुपट्टे के छोर में गाँठ बाँधकर रख लेना। मेरा प्यार क़बूल भले मत कर पर देख मैं दे रहा हूँ।" साहिबा पूरी की पूरी पिघल गई। बोल पड़ी, "ओ मेरे मिर्ज़ा रे।"
मिर्ज़ा ने कहा, "सुन, लेने की तुझे मनाही सही, पर ना दूँ ये मेरे बस में भी तो नहीं। जा, मेरा प्यार

तेरा हुआ।" साहिबा बोली, "मेरे मिर्ज़ा, तू फ़िक्र मत कर। मेरे पास महफ़ूज़ रहेगी ये तेरी सोने की कणी। अपना ख़्याल रख। तुझे भी मेरा प्यार!"

उन स्वप्नवत होंठों पर

ये सुब्हें
जो धुंध में लिपटीं
गुमी हुई हैं
सर्द सुब्हें
जबके मैं धूप के बीच
एक गुंजाइश रखता हूँ
एक अंदाज़ा नपा-तुला
और ठोस
दूर... यहाँ से बहुत
धूप की वह प्रत्याशा
गालों को सेंकती हुई
कहीं
उधर।

एक गति सिर्फ एक
लयहीन क्रमगति
अभी
यहा।

कोई तस्वीर महज़
आँखें
होंठ
जिनमें कहीं कोई
गरमाई
गुनगुनी प्रत्याशा सी
स्वप्नवत
देह की गरमाई के
अंदाज़ सरीखी
गुदाज़ गुनगुनी
इतनी पारदर्शी
जितनी कि

यह धुंध।

तुम क्यों रोती हो?
गाली आँखों और ख़ुश्क़ होंठों वाली तुम
गर्म और सुर्ख दूब की किसी
आरामगाह में सिमटी हुई
इस सुबह
क्यों?

और मैं
जो आँखों के जंगल में हूँ
आँखों की आहटों के
इस ठिठुरते हुए जंगल में
सूटकेसों और ब्रीफ़केसों की
ठण्डी ख़ामोशी के बीच
चला जाता हूँ किसी
लयहीन क्रमगति में
सुबह के जागते-जागते उन
स्वप्नवत होंठों पर
झुकता हुआ।

हर पारदर्शी शै
जो किसी ख़ास रंग में थी
अब दिन की देह में यक़सां
वो जागी हुई देह दिन की
किसी ख़ामोश संगीत में
और नींद
और ख़ाब।

मैं तुम्हारे
स्वप्नवत होंठों पर
और और
झुकता
चला
जा
रहा
हूँ।

जैसे मैं, जैसे तुम

केवल खिड़कियाँ हैं:
जैसे आँखें,
जैसे धूप।

केवल परदे हैं:
जैसे चेहरे,
जैसे हवा।

केवल दीवारें हैं:
जैसे मैं,
जैसे तुम।

किताब में गुलाब

हाथ
गुलाब भी हो सकते हैं।

हथेलियाँ
किताब भी हो सकती हैं।

तुम मेरे हाथों को
अपनी हथेलियों में

छुपा लो।

हौंसलों नहीं राहतों के दरमियां

चिड़िया के गीत सरीखी धूप वह।
उड़ती हुई मेरे अहाते में सुस्ताती
और उजाला वह बदन दिन का
पिघला-पिघला हल्के नीले रंग वाली
मेरे कमरे की दीवारों पर
जैसे दीवारें की पिघली जाती हों
मोम की ये दीवारें।

दिल मेरा मगर ख़ूब उदास।

दिल मेरा– पानी पर तेल के दाग़ सा– मुकरता घुलने से
दिन के इस दूधिया उजाले में दीवारें पिघलती हैं
ख़ूब सजी हुई है किताबों की तरतीब
और शाइर की आवाज़ भी बहोत
ख़ुद्दार और जांफ़िशानी है
लेकिन दिल मेरा
एक घाव!

जागी हुई तमाम
इस तख़लीक़ के साथ
जागा हुआ ज़ख्म
जागा हुआ ख़ाब
हौंसलों नहीं
राहतों के
दरमियान

दर्द दिल का
जागता!

दो नावों के दो किनारे

दो नावों के दो किनारे
(तो क्या समुद्र भी दो?)

दो आँखों के दो सकारे
(तो क्या आकाश भी दो?)

दो प्राणों के दो एकान्त
(दो क्या प्रीति भी दो?)

दोनों के वहाँ होने में
एक तृषा की एक तपन
(दो आँखों का एक सपन)

मन के मानचित्र पर कहाँ होती है कोई विषुवत रेखा

मिट्टी के घड़े के भीतर
जैसे अँधेरे की झाई होती है
हवा का निस्पृह बगूला
ऐसे ही मन के भीतर
पीड़ा का पुंज है
मन से ही पृथक,
विलग, निस्संग

एक बावली-सी
अचीन्हीं लालसा
आग की भांति
स्वयं को सुलगाती
निगलती

एक हूक, टीस, गूँज
जिसका कोई ध्रुव नहीं
बिन्दु नहीं
(मन के मानचित्र पर यूँ भी कहाँ
कोई विषुवत रेखा होती है)

मन की सीप का मोती
मन को ही खटकता
जबकि मन को अपनी ही
सुध नहीं, भान नहीं,
प्रतीति नहीं

मन के दुकूल पर
अपरिचय की गाँठ

क्या करें, कैसे कहें,

पहले ख़ुद बूझें तब ना
औरों को समझाएँ

कि एक परायी पीर है
कह दें तो उससे छूटें भी
कहने भर से वो तब
जैसे अपनी हो जाए

कहन का मुहावरा
नहीं मिलता ऐसा भी नहीं
बस अपने से ही बेगानापन है
अजानापन है

अँधेरे की झाई,
हवा का बगूला है
भीतर गहरे अंतर

मिट्टी का घड़ा
स्वयं को जल से भर ले
तो उसमें गूँज कहाँ से हो?

और एक हूक ही तो अपनी है
हज़ार अपरिचय उसी से है!

आपका कोई नहीं कोई नहीं दिल के सिवा

उस शहर से
तुम्हारे लौट आने के
बहुत-बहुत दिनों बाद!

मैं जाऊँगा वहाँ,
हवा के पारदर्शी गुम्बद में
टहलते हुए!

हर उस दरख्त को छूकर देखूँगा,
जिसे छुआ होगा तुमने शायद कभी,
इस उम्मीद में कि छू सकूँ
तुम्हारी छुअन।

हर उस मंज़र को देखूँगा ग़ौर से,
जिसे देखा होगा तुमने शायद कभी,
ताकि देख सकूँ तुम्हारा देखना।

उस मोड़ पर चला जाऊँगा
जहाँ रेलगाड़ियाँ सुस्ताती हैं,
ताकि इंतज़ार कर सकूँ
तुम्हारे इंतज़ार का,
जो अब नहीं है।

ख़ूब गहरी साँस लूँगा,
भर लूँगा अपने सीने में
तुम्हारे ना होने की ख़ुशबू,
और इस तरह आख़िरकार
घुल-मिल जाएँगी
हमारी साँसें।

तुम्हारा नाम लेकर पुकारूँगा और
एक-एक कर सितारा बनती जाएगी
मेरी यह पुकार और भर जाएगा
शाम का पूरा आकाश
तारों से।

और तब जाकर तुम समझोगी,
क्या होता है, जब गाता है कोई
तड़प के तरन्नुम में:

"देखिए चैन मिलेगा ना कहीं दिल के सिवा
आपका कोई नहीं कोई नहीं दिल के सिवा
आपका कोई नहीं कोई नहीं दिल के सिवा
जाइए आप कहाँ जाएँगे!"

हमारे बीच बारिशों का परदा है

नीले कोहरे के लहराते परदों के दरमियान
सन्नाटों की सुई सरकती है

ठण्डी दीवारों में जज़्ब हो चुके हैं
बीते सारे दिन
रातों के गलियारों में
गहराता बैंजनी अँधेरा
तुम छूट जाती हो अधूरी अपनी देह में
और मैं उठता हूँ बार-बार नीमबेहोशी में
ढाँपने तुम्हें अपने इतने अधूरेपन से

मैं ढूँढ रहा नींद का पत्थर
तुम पानी के पुल पर खड़ी हो
सोच और सन्नाटे के अंतराल में
हमारे बीच बारिशों का परदा है
नशे में नीली पड़ रही है परछाइयों की देह
चुंबनों की चंपई गंध में
एक-दूसरे को खोजते हैं हम
पिछली कई सदियों से
और समय कहीं नहीं है

हमेशा, हमेशा नामुमकिन रहा है मेरे लिए
तुम्हारी साँसों के कोहरे से होकर गुज़रना
मैं थम गया हूँ
हम थम गए हैं
बीत रहे सदियों से
उड़ते धुंध में अभिशप्त
उठते हैं बार-बार
एक-दूसरे की ओर
जबकि जानते अपनी सरहद
कि छूट जाना है बाहर

इतने अधूरे आकाश में

लेकिन
मैं छीजता रहूँगा यूँ ही ताज़िंदगी
और तुम बिखरती रहोगी बारिश
और पानी की परछाई में
टूटती रोशनी के क़तरों-सी
हम बार-बार मरेंगे आधे-अधूरे
बीतते एक-दूसरे के बदन में
और ग़र्क होते हमेशा
किसी नाउम्मीदी के नुक़्ते पर

मैं कुछ नहीं रह जाऊँगा सचमुच
अगर बेदख़ल हो गया कभी
हमारे अधूरेपन की
इस ज़मीन से

मैं टहलूँगा तुम्हारे भीतर कोहरे की तरह

मैं डूब रहा एक उम्मीद की तरह
सांझ के दूरस्थ सीमांत पर
पेड़ों के हिलते हुए सिर
हवा के कंधों पर जा टिक हैं
छत पर मुँह फाड़े पड़ी हैं
सैटेलाइट की छतरियाँ
और लाल आँख वाले वॉच टॉवर
के पीछे जा गिरी है
धूप की कटी पतंग

मैं धंसता हूँ
अपने भीतर के
दर्रों में

तुम कहीं बैठीं मुस्कराती होंगी
साँस और सिरहन के बीच
लाँघती समय की सरहदें
गुम होतीं अपनी ही गंध के
झुटपुटे में

मैं ग़र्क करूँगा
हमारे अंतराल का यह अँधेरा
तुम सांझ की स्याही से
लिख देना सुबह

पाटते सारे दर्रे रास्ते रूकावटें
मैं टहलूँगा तुम्हारे भीतर कोहरे की तरह
ख़ामोश परदों में टटोलूँगा तुम्हारी परछाई
जबकि शामें बुझती रहेंगी
उचटती रहेगी धूप

मैं तुम्हारी देह की नदी में उतरकर
छू लूँगा तुम्हारे किनारे

और तब
शायद इतनी नाउम्मीदी न होगी
न ऐसी टूटे छाजे-सी
ज़िन्दगी।

जो एक बारिश की बेवक़्ती है

कनखियों से झाँकता हुआ समंदर
अपने किनारों पर अधूरा छूट जाता है

सुबह के तट पर
वह समंदर
लहरों को ओढ़कर
सुस्ताता

मैं जिसे एक प्यास के साथ याद रखता हूँ

एक प्यास की याद
जो कि एक बारिश की बेवक़्ती है
और समंदर
जो ग़ैरमुमकिन है
अपनी नींद में।

नमक की मीनारें समुद्र को पुकारती हैं

कांसे की रातों में
प्रतीक्षाओं का ठंडा सीसा लिए
बालू-बजरी में धंसाए घुटने
किसी 'पेपरवेट' की तरह।

मानो अंधड़ में छितर जाएगा
ये समूचा रेत का कछार
अगर नहीं होगी वहाँ पर
वो खारी प्रतीक्षा!

जबकि समुद्र बहुत बहुत दूर हो
लहरों की अंगुलियाँ आगे बढ़ाने के बावजूद
अंगुलियों के पोरों पर चाहना के
निशानों के बावजूद

खारा समुद्र! नमक की उसे भला क्या तलब?
लेकिन नमक से उसे परहेज़ भी क्यों हो?
जैसे सांप ज़हर से नहीं डरता
प्यार इंतज़ार से नहीं

नमक की मीनारें चाँदनी में चमकती हैं
चाँदनी के महल की तरहया जैसे
रातों की तराई में बर्फ़ के दरख़्त
नमक गल जाता है
बर्फ़ पिघल जाती है
और खारा समुद्र मचलता जाता है
लहरों का पश्मीना पहने
जिसमें सैकड़ों सिलवटें

और, समंदर की प्यास मिटती नहीं

समंदर से प्यासा कोई नहीं
बारिश की बेवक़्ती से भरा समंदर!

ताम्बई रातों में भाप,
बादल और पारे की छत के तले
नमक की मीनारें
समुद्र को बुलाती हैं
ज्यों नावों को बुलाते हों
लाइटहाउस
नावें / दिशाओं को

और बुलाहटों से
भर जाता है / रात का फलक
कि तुम चली आओ!

देखो तो,
समय के खोखल में
प्रतीक्षा की ये चाँदनी!

घर में अकेली लड़की

घर में अकेली लड़की सिर नहाती है लेकिन बाल नहीं बाँधती।

किचन में जाकर लौट आती है लेकिन खाना नहीं पकाती।

वह कोई फ़िल्म पूरी नहीं देखती। किसी किताब का कोई चैप्टर पूरा नहीं पढ़ती।

टीवी चलाती है तो रिमोट से बदलती रहती है चैनल्स।

लड़की कहीं ठहरना नहीं चाहती। कि वो ठहर-ठहरकर थक चुकी होती है।

अब वो बेसबब चलना चाहती है, पोलिष उपन्यास के पेज 134 से 143 तक ही सही, वॉशरूम से ड्राइंगरूम तक ही सही, कॉफ़ी के मग से मैंगी की भाप तक ही सही, अपने भीतर रुक-रुककर।

लड़की बड़े गले का टॉप पहनती है। लड़की डेनिम शॉर्ट्स पहनती है। लड़की अनुभव करना चाहती है अपनी जाँघों पर दिन की सफ़ेद रोशनियाँ, अपनी रोमावलियों में हवा का स्पर्श, अपनी कंखौरियों का सूखा पसीना।

उसके "लेयर्ड विद बैंग्स" हेयरकट की एक आवारा लहर उसके होंठों और कपोलों पर बिखर जाती है। वो उस छुअन की अनुभूति तक को पी लेती है। वो डार्क रेड लिपस्टिक लगाती है और "पाउट" वाली सेल्फ़ी खींचती है। वो मैटेलिक ग्रे नेलपेंट लगाती है और आँख मूँदकर अनुभव करती है नख पर उसका ठंडा फ़ाहा।

इतवार को घर में अकेली लड़की अपनी इच्छाओं की रंगीन तस्वीर बन जाती है।
लड़की ख़ुद को छूती है। हाथों और अंगुलियों के फ़ीतों से मापती है अपने तमाम फ़ासले।

कितने मील, कितने बरस! कितनी ख़ुश्की, कितनी नमी! कितनी पहचान, कितना परायापन!

लड़की लाड़ से सिसकती है और चबा लेती है अपना निचला होंठ। दांतों से दबा लेती है तर्जनी।

"अहा, कितना तो सुख है और कितना अकेलापन है!" वह मन ही मन बुदबुदाती है, "कि सुख कितना अकेला होता है!"

"जैसे मैं छूती हूँ ख़ुद को, वैसे कभी मुझे छूकर दिखाओ तो जानूँ", इस चुनौती से भरे सैकड़ों चुम्बन एक क्लिप में भरकर वह वॉट्सएप्प से भेज देती है, सदाशय स्माइल्स के गुलदस्तों सहित।

उसके गीले चुम्बनों के जवाब में तुरन्त चुम्बनों के रूखे बिम्ब लौट आते हैं- रस्मी, फ़ौरी, सतही और जल्दबाज़।

लड़की मैसेज खोलकर मुस्कराती है, और उन तमाम इमोजीज़ को वहीं रोप देती है,

जहाँ गुलदान में ऊँघ रहे होते हैं नक़ली गुलाब।

लेखक के बारे में

सुशोभितसक्तावत

युवा कवि, वृत्तांतकार, पत्रकार, अनुवादक।
13 अप्रैल 1982 को मध्य प्रदेश के झाबुआ में जन्म। शिक्षा-दीक्षा उज्जैन से। अंग्रेज़ी साहित्य में स्नातकोत्तर। एक साल पत्रकारिता की भी अन्यमनस्क पढ़ाई की।
सिनेमा, साहित्य, धर्म-दर्शन, संगीत, खेल, कलाओं और लोकप्रिय संस्कृति में गहरी अभिरुचि। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, ब्लॉग, वेबसाइटों पर कविताएँ, निबंध, समालोचनाएँ प्रकाशित। सोशल मीडिया पर लोकप्रिय।
वर्ष 2010 में सम्वाद प्रकाशन, मेरठ से स्पैनिश कवि फ़ेदरीको गार्सीया लोर्का के पत्रों के अनुवाद की एक पुस्तक प्रकाशित। सत्यजित राय के सिनेमा पर एक निबंधाकार पुस्तक और कविताओं का एक अन्य संकलन शीघ्र प्रकाश्य। अभिनेत्री दीप्ति नवल की आत्मकथा का सम्पादन भी कर रहे हैं।
सम्प्रति- दैनिक भास्कर समूह की पत्रिका "अहा! ज़िन्दगी" के सहायक सम्पादक।
Email- sushobhitsaktawat@gmail.com
Phone- 0-99817-96936
डाक पता- सुशोभित सक्तावत, 103 मोनार्क रेसीडेंसी, सी-24 श्रीजी वैली, बिचौली मर्दाना, इंदौर, मध्य प्रदेश- 452016